जीवन-चरित्र

गाऊँ, गुन गाऊँ,
सीस निवाऊँ,
चरनन ते
गुरु चतरा को
मन ध्याऊँ ।। स्थायी ।।

ग्यान चतुर,
ध्यान चतुर,
पुनि गीत चतुर,
जेहि रीत चतुर,
वाक चतुर,

रस राग चतुर,
बरनी न जाय
चतुराई ।।

ऐसो महापुरुष साचो,
सब गुनियन में गुनग्यानी,
जिन चरनकृपा
गुन गाऊँ ।। अन्तरा ।।

—"सुजान"

(मालकंस, आड़ाचौताल में निबद्ध)

जीवन-चरित्र

पद्मभूषण श्री० ना० रातंजनकर

उन्नीसवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्ध भारत के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समय था। लगभग एक सहस्र वर्ष की पराधीनता के पश्चात् इसी समय में पुनः जागृति का उदय होने लगा था। राष्ट्रीय भावना भारतवासियों के विचारों में जग उठी थी और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से कहिये अथवा किसी और कारण से, सर्वसाधारण जनता में स्वतन्त्रता के आचार-विचारों की ऊर्मियाँ उठने लगी थीं। लगभग डेढ़ सौ वर्ष के पाश्चात्य शासनकाल में हमारे भारतीय राजाओं के राजतेज को कुछ पाश्चात्य राजनीति वश और कुछ आपस की गृहयुद्ध के कारण से बहुत धक्का पहुंचा। राजा को भगवान् विष्णु का अवतार, एक अनुपेक्षणीय विभूति समझने का तथा 'राजा कालस्य कारणम्' का भाव मिटता चला। प्राचीन समय से चलती आयी राजा-प्रजा की परम्परा के स्थान पर अब लोकतन्त्र-नीति का ध्येय बना। इसी समय में बड़े-बड़े राष्ट्र नेतागण दादाभाई नवरोजी, लोकमान्य तिलक, गो० कृ० गोखले, लाला लाजपतराय, बिपिनचन्द्र पाल, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फिरोजशाह मेहता, श्रीनिवास शास्त्री एवं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसे पैदा हुए। जिनकी तपस्या के फलस्वरूप हम भारतीय आज एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में संसार के सब राष्ट्रों से यथायोग्य सम्मान एवं आदर पा रहे हैं। यह समय ऐसा भाग्यशाली था कि उसमें न केवल राजनैतिक क्षेत्र में, वरन् सांस्कृतिक जीवन में भी भारतमाता ने अनेक विश्वमान्य विद्वान् व्यक्तियों, महाकवियों, चित्रकारों, मूर्तिकारों, शिल्पज्ञों, गायक-वादकों एवं अन्यान्य कलाकारों को जन्म दिया। ऐसा कौन व्यक्ति इस संसार में होगा जिसने डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर, सर जगदीश चन्द्र बोस, एम० विश्वेश्वरैया, श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रमण महर्षि, सी० वी० रमण का नाम न सुना होगा।

इसी कालावधि में संगीत क्षेत्र में भी कई चिरस्मरणीय विभूतियों का उदय हुआ। राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर, कृष्णधन बनर्जी, चिन्नुस्वामी मुदलियार जैसे संगीत शास्त्रकार, जिन्होंने अपने जीवन भर केवल संगीत के प्रेम के कारण निरपेक्ष भाव से इस कला एवं विद्या की सेवा करके जनता को ज्ञान लाभ कराया। तानरस खाँ, हददु-हस्सु खाँ, बड़े मुहम्मद खाँ, बन्देअली खाँ बीनकार, अलीहुसैन खाँ बीनकार, इनायत हुसेन खाँ, नत्थन खाँ, कुदौसिंह, नानासाहब पानसे, अल्लादिया खाँ, अबदुल करीम खाँ, बालकृष्ण बुआ, भास्कर बुआ, शंकर राव पंडित, विष्णु दिगंबर जी तथा अन्यान्य अनेक धुरंधर भारत विख्यात गायक-वादक, जिन्होंने अपनी अनुपम कला का परिचय जनसाधारण को

देकर देश भर में रागदारी सङ्गीत कला की ज्योति प्रज्वलित रखी; इसी कालावधि में अवतरित हुए।

इन्हीं महान् विभूतियों में से सङ्गीत क्षेत्र में एक अग्रगण्य विभूति गुरुदेव पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी थे, जिनका जीवन सङ्गीत के पुनरुद्धार के लिये ही बीता। पंडित जी का जन्म एक चित्तपावन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण कुटुम्ब में १० अगस्त १८६० में श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन बम्बई के वालुकेश्वर में हुआ। उनका जन्म उस जाति में हुआ था कि जिनको कुशाग्र बुद्धि की देन निसर्गतः ही प्राप्त होती है। पंडित जी के पिताजी श्री नारायणराव उर्फ नाना बम्बई में ही एक धनी सेठ के यहाँ मुनीम थे। इनके पूर्वज कोंकण में नागाँव नामक गाँव के रहने वाले थे। दो-तीन पीढ़ियों से ये लोग बम्बई आकर बसे थे। श्री नानासाहब का एक अपना श्री-दत्त मन्दिर उनके घर में ही था। यह मकान उनका निजी था जो अब भी वालुकेश्वर में समुद्र तीर पर विद्यमान है। नानासाहब दत्तात्रेय के उपासक थे। इनके घर में नित्य प्रतिदिन अपने इष्ट देवता की पूजा होती थी।

इस समय भी यदि हम वालुकेश्वर का पर्यटन करने जायें तो एक तीर्थ स्थान के दर्शन का आनन्द मिलेगा। समुद्र के तीर पर एक बड़ा शिवालय है, जिसके देवता का नाम वालुकेश्वर (वालुका-ईश्वर) है, इसके आस-पास कई छोटे-छोटे मन्दिर एक पुष्करिणी को घेरे हुए हैं। पुष्करिणी का नाम 'बाणगंगा' है। इस पुष्करिणी के विषय में एक जनश्रुति है कि श्री राम ने (सम्भवतः भार्गव राम ने) पानी की कमी देखकर भूमितल पर बाण मार कर यह पुष्करिणी उत्पन्न की थी। समुद्र के तीर पर, अति निकट होते हुए भी बाणगंगा का पानी नमकीन नहीं है। वह पीने योग्य तो है नहीं, क्योंकि वहाँ के निवासी उसमें नहाते-धोते हैं जिससे पानी गंदा हो गया है। वहाँ के निवासियों में अधिकतर मारवाड़ी, गिरी, पुरी, गोसाईं एवं गुजराती ब्राह्मण और बनिये हैं। कुछ महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों के भी घर हैं जिसमें एक भातखण्डे कुटुम्ब का भी है।

पंडित जी का बाल्यकाल इसी वालुकेश्वर में बीता। नानासाहब के तीन पुत्र एवं दो कन्याएँ थीं। ज्येष्ठ पुत्र का नाम त्रिबकराव था। इनको अप्पाजी कहते थे। आप कुछ वर्ष पुलिस में नौकरी करके युवावस्था में ही स्वर्गस्थ हो गये। आपके सुपुत्र बड़ौदा में डाक विभाग में नौकरी करते थे।

अप्पाजी के पश्चात् पंडित जी का जन्म १०-८-१८६० को हुआ। इस दिन श्रीकृष्णजन्माष्टमी थी। वालुकेश्वर के गुजराती लोग भगवान् कृष्ण के भक्त तो थे ही, प्रति वर्ष श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन वहाँ बड़ी धूमधाम से उत्सव, झाँकी, भजन, रामलीला, कृष्णलीला के नाट्य प्रयोग आदि हुआ करते थे। उसके अनुसार इस वर्ष भी उत्सव होता रहा। इसी महोत्सव के समय पंडितजी का जन्म हुआ। इस महापुरुष को उनके साठवें वर्ष की अवस्था में भी जिसने देखा उसके सम्मुख एक तेजस्वी मूर्ति, विशाल भाल प्रदेश, चमकती हुई चंचल आँखें, केतकी जैसी सुनहरी अङ्गकांति, विशाल वक्षस्थल, लम्बे हाथ पैर, सरल लम्बी नाक इत्यादि प्रभावशाली सुदर्शनीय चिन्हों से युक्त दिखाई

हाईकोर्ट वकील

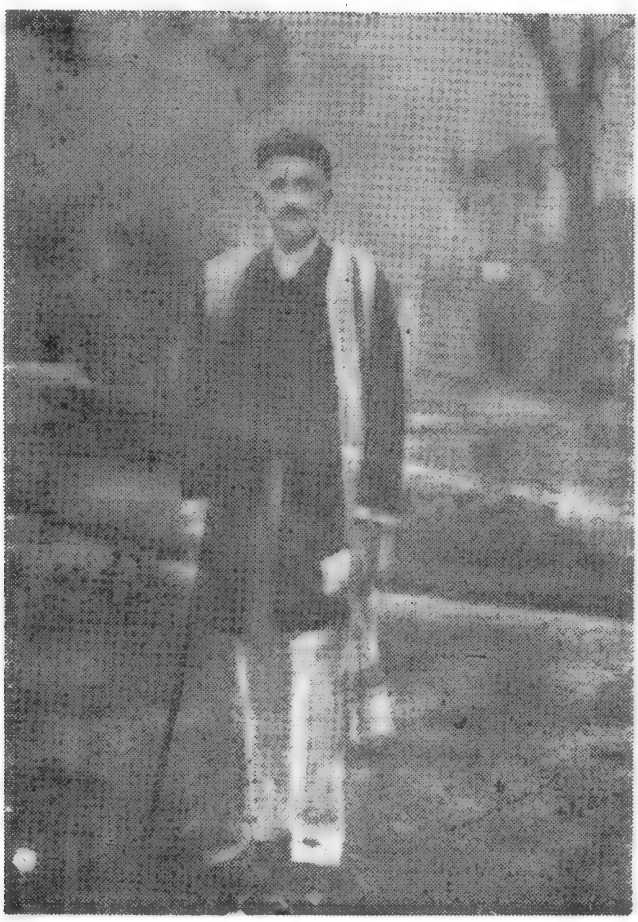

पण्डित भातखण्डे
[१९००]

पण्डित भातखण्डे
[१९२२]

देती; तब यही मूर्ति अपनी शिशु अवस्था में कितनी सुन्दर, कितनी सुहावनी, कितनी प्यारी रही होगी इस बात की कल्पना की जा सकती है। इस सुन्दर देह में उतना ही सौन्दर्य-पूर्ण मन बसता था। पंडित जी के सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को उनके दर्शनीय स्वरूप के अतिरिक्त उनके सम्भाषण का प्रवाह पवित्र जलप्रवाह की भाँति, उनके हाव-भाव बसन्त ऋतु में मन्द समीर के झोंकों में वृक्षवेलियों की भाँति मुग्ध कर लेता था। सुनने वाले के मन को पूर्णतया: प्रभावित कर देने की कला उनमें इतनी चमत्कारी थी कि जीवन भर उनका विस्मरण न हो। बाल्यावस्था में इसी व्यक्ति की तोतली बोली संगीतमय रही हो तो क्या आश्चर्य।

पंडित जी को संगीत की अभिरुचि दिलानेवाली उनकी माता ही थीं। माताजी के कंठ से निकलती हुई सुमधुर लोरियाँ, भजन स्तोत्रादि सुनकर इस बालक को मानो अपने जीवन कार्य की प्रेरणा ही मिलती रही। ये भजन स्तोत्रादि बड़े ध्यान से सुनते जाते थे, वरन् उनको अपनी टूटी-फूटी तोतली बोली में गाते भी थे।

पंडित जी के छोटे भाई का नाम हरिभाऊ था। ये भी गाने-बजाने के प्रेमी थे। और दीलरूबा बजाते थे। बैङ्क में नौकरी करते थे। इनको भी मैंने देखा है। वे जीवन भर उसी वालुकेश्वर वाले अपने मकान में रहे और उनका देहान्त भी वहीं हुआ। उनके एक पुत्र दत्तात्रेय नाम के थे। जिनको घर में केदार नाम से पुकारते थे। इनको आध्यात्मिक साधन योग प्राणायाम इत्यादि का अभ्यास था। बाणगंगा में घण्टों खड़े रहकर प्राणायाम करते रहते। उसी में एक दिन उन्होंने अपने प्राण अर्पण किये। उनका परिवार कुछ दिनों तक बम्बई के पास पनवेल नामक गाँव में रहता था। अब इनके एक पुत्र श्री माधव राव अपनी माता श्रीमती रमाबाई के साथ वालुकेश्वर में अपने मकान में रहते थे।

माता के कण्ठ से निकले हुए सुस्वर एवं मधुर गीत सुनते-सुनते बालक गजानन (पंडित जी को लोग बचपन में गजानन नाम से पुकारते थे) के कान स्वरों से खूब परिचित हुए। माता जी के गाये हुये सब गीत इस बालक को कण्ठस्थ हुए और वे उन्हें अपनी मराठी प्राथमिक शाला में गाते रहे। पाठ्यपुस्तकों में से सीखी हुई कविताएँ एवं अन्यान्य गीत गाने में बालक गजानन अपने सहाध्यायी लड़कों में अग्रगणी थे। अपने सुस्वर गायन पर उन्होंने परितोषिक भी पाये थे। १०-१२ वर्ष की अवस्था में गजानन को बंसुरी बजाने का शौक लगा। बाँसुरी बजाने में पर्याप्त प्रगति भी की। वालुकेश्वर में हर वर्ष होने वाले नित्य-नैमित्तिक उत्सव-मेलों में गायन-वादन एवं नाट्य-नृत्य प्रयोगों में गजानन के बाँसुरी-वादन की स्वतन्त्र अथवा साथ संगति में बहुत माँग होती रहती थी। नृत्य-नाट्य प्रयोगों में तो गजानन की बाँसुरी की संगत अनिवार्य समझी जाती थी।

पंडित जी को घर में 'अण्णा' भी कहते थे। अब हम इसी नाम से उनका उल्लेख करेंगे। मराठी पाठशाला की शिक्षा समाप्त करके अण्णा बम्बई के एल्फिन्स्टन हाई-स्कूल में दाखिल हुए। उस समय यह हाईस्कूल परेल में था। वालुकेश्वर से यह स्थान लगभग तीन मील दूर था। उस समय बम्बई में न ट्राम चलती थी न बस! विक्टोरिया (बम्बई में घोड़ागाड़ी को विक्टोरिया कहते हैं), मोटर एवं बाइसिकल; ये ही वाहन उस समय उपलब्ध थे। पर इनमें से एक का भी उपयोग करने योग्य अण्णा के घर की

आर्थिक परिस्थिति नहीं थी। विक्टोरिया में प्रतिदिन आने-जाने में उस समय भी कम से कम एक रुपया लग जाता था। मोटरें तो बड़े-बड़े धनी सेठ-साहूकारों के सिवा और किसी के पास रहना असंभव ही था। बाइसिकल भी उस समय के अरुणा जैसे घर के लिए एक ऐशो-आराम की वस्तु थी। इसके अतिरिक्त मध्यम परिस्थिति वाले घर में ऐसा कौन जवान सुदृढ़ लड़का उस समय था जो प्रतिदित पाँच-छः मील पैदल न चल सकता? अरुणा का भी स्वास्थ्य लड़कपन में बहुत अच्छा था। उस समय अरुणा को हाई स्कूल जाते हुए जिन लोगों ने देखा था, वे उनका वर्णन इस प्रकार करते थे—गौर वर्ण, लम्बा कद, तेजस्वी नेत्र, हँसमुख चेहरा, घुटा हुआ सिर और छोटी-सी चुटिया, सिर पर एक गोल टोपी जो सदा पीछे की ओर हटाई हुई रहती, धोती काँछा लेकर पहनी हुई, एक कुरता तथा कोट पहना हुआ, उसी हाईस्कूल में जानेवाले अपने मुहल्ले के एवं रास्ते में मिलकर साथ चलनेवाले और लड़कों से घिरे हुए, लड़कों के मुखिया की भाँति, पैर लम्बे होने के कारण लम्बी चाल चलते हुए, हाईस्कूल के पाठ्य विषयों पर बातचीत करते हुए, हँसते-खेलते अरुणा पौन घंटे के अंदर हाईस्कूल जाकर पहुँचते थे। हाईस्कूल में गज्जू (गजानन भातखण्डे) की बड़ी धाक थी। हर स्कूल में कुछ शरारती लड़के तो रहते ही हैं। एल्फिन्स्टन हाईस्कूल में भी कुछ ऐसे लड़के थे जो केवल हँसी-मजाक के लिए छोटे-छोटे बच्चों को सताते रहते। इन शरारती लड़कों की शिकायतें शिक्षक के पास न ले जाकर सब छोटे बालक गज्जू के पास जाकर करते। गज्जू एवं उनके एक-दो और साथी जो उन्हीं की भाँति शक्तिशाली थे मिलकर शरारती लड़कों की काफी मरम्मत करते। गज्जू की धाक इन लड़कों में इतनी जमी हुई थी कि किसी की शिकायत पर गज्जू बदला लेने के लिए निकल पड़ते तो सब शरारती "अरे भागो भातखण्डे आयो" कहकर कहीं के कहीं भाग जाते।

हाईस्कूल पास करके अरुणा एल्फिन्स्टन् कालेज में दाखिल हुए। इसी समय अरुणा को सितार का शौक लगा। उन्हीं के मुहल्ले में गोपाल गिरी बुआ नामक एक गुसाईं सितार बजाया करते थे। इनका सितार वादन सुनकर अरुणा को भी सितार सीखने की उत्कट इच्छा हुई। उन्होंने गोपाल गिरी बुआ से उनके गुरु का पता पूछा। बुआ अरुणा को एक दिन अपने गुरु के घर ले गए। वालुकेश्वर के रास्ते पर ही पास में उनका घर था। वहाँ जाकर अरुणा देखते क्या हैं कि एक छोटी-सी कोठरी में गद्दे चटाइयाँ बिछी हैं, कोने में एक बड़ा सितार एवं उसी के पास एक बीन, दूसरे कोने में कुछ धूम्र पान का सामान हुक्का इत्यादि रखा हुआ और दीवार से लगी हुई एक गद्दी, उस पर एक गाव-तकिया लगा हुआ और उस गद्दी पर एक वृद्ध पुरुष बैठे हुए हैं। उन्होंने "कौ ऽ ऽ ऽ न ?" ऐसा प्रश्न नीचे देखते हुए किया। ये महानुभाव अंधे थे। "ये ही मेरे गुरु हैं" कहकर गोपाल गिरी बुआ ने उनका परिचय अरुणा से करा दिया। ये वृद्ध पुरुष बम्बई के एक धनी सेठ भाटिया जाति के थे। अंधे होने के कारण कुछ धंधा-रोजगार तो कर नहीं सकते थे और धनाढ्य होने के कारण उदर-निर्वाह की कोई ऐसी चिन्ता उन्हें थी नहीं। उन्होंने संगीत ही की सेवा में अपने जीवन का सुख माना। भाटिया लोग वैष्णव होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं। श्री स्वामी वल्लभाचार्य एवं उनके शिष्य प्रशिष्य, अनुयायी लोगों के प्रस्थापित किए हुए वैष्णव संप्रदाय के मंदिर

एवं मठ भारत भर में स्थान-स्थान पर अब भी विद्यमान हैं। बम्बई में भी एक-दो ऐसे वैष्णव मन्दिर और उनसे जुड़े हुए मठ हैं। इन मठों के मठाधिपति महन्त स्वामी वल्लभाचार्य के ही वंशज होते हैं। ये तैलंग ब्राह्मण होते हैं। इन्हीं महन्तों को भगवान् श्रीकृष्ण की जीती-जागती मूर्ति समझकर बंबई के भाटिया लोग देवता की भाँति उनकी पूजा-अर्चा, भोग लगाना, दान-धर्म इत्यादि किया करते थे। इन्हीं महन्तों में से 'जीवन जी महाराज' नामक एक महन्त बंबई के भुलेश्वर के वैष्णव मठ के अधिपति थे। इन जीवन जी महाराज का नाम संगीतक्षेत्र में एक कला-कुशल बीनकार के रूप में प्रख्यात है। इन महाराज को संगीत से प्रगाढ़ प्रेम था। ये प्रख्यात पन्नालाल बाजपेयी सितार-वादक के शिष्य कहलाते हैं। जीवन जी महाराज अपने मठ में समय-समय पर संगीत सभाएँ करते थे। कोई बड़ा नामी गायक-वादक बंबई आता तो उसका एकाध कार्यक्रम मठ में अवश्य होता। स्वयं एक अच्छे बीनकार होने के नाते जीवन जी महाराज गुणी गायक-वादकों का अच्छा सम्मान करते एवं उनको पुरस्कार देकर भी प्रसन्न करते। इन महाराज के संबंध में सुना जाता है कि केदारा, मालकंस, बागेश्री तथा दरबारी-कान्हड़ा ये चार राग जिस माधुर्य, जिस कलाकौशल के साथ इन्होंने बजाए वैसे फिर कभी सुनाई नहीं दिये। इन्हीं महाराज की सेवा में रह कर उन अंधे भाटिया सज्जन ने सितार-वादन का अभ्यास किया। इनका नाम था वल्लभाचार्य दामुल जी।

गोपाल गिरी बुआ ने अण्णा का परिचय देकर उनकी सितार सीखने की आकांक्षा अपने गुरु पर प्रकट की। गुरुजी हंस कर बोले "अरे, यह भले घर का लड़का इस में कहाँ कूद पड़ा ? ये तो बड़ी बैड़ी विद्या है। बाकी सब छोड़-छाड़ कर यदि इसी के पीछे पड़ा तो कहीं रुपये में पाई-पैसा भर हाथ लगेगी। तुम तो कालेज में पढ़कर बी० ए०, एम० ए० होने जा रहे हो। इसको सीखकर क्या करोगे ?" पर अण्णा ने आग्रह पूर्वक बताया "जो कुछ हो, मैं आपकी सेवा अवश्य करूँगा और आपकी कृपा होगी तो सितार अवश्य सीखूंगा।" "अच्छा, आया करो, पर प्रथम केवल जो मैं बजाता हूँ उसको सुनते रहो। सुनते-सुनते उकता जाओगे तो अपने आप आना बंद करोगे। मेरे सितार वादन का कुछ अच्छा परिणाम तुम्हारे मन पर हुआ तो फिर आते रहोगे। फिर तुमको सिखाना आरम्भ करूँगा। मेरे सितार वादन का समय रात्रि को नौ-दस बजे का है। उस समय आया करो।" यह कह कर गुरुजी ने अपना सितार उठाकर लाने को गोपाल गिरी बुआ को आज्ञा दी। सितार लेकर दो घंटे खूब बजाया जिसको सुन अण्णा के आश्चर्य एवं आनन्द का पार न रहा। उस दिन से अण्णा नित्य प्रति रात्रि को वल्लभदास जी के घर जाकर उनका सितार वादन ध्यानपूर्वक सुनते रहे। गोपाल गिरी बुआ के यहाँ जाकर उनके सितार पर थोड़ा-थोड़ा अभ्यास भी करने लगे। गुरुजी के यहाँ सितार वादन सुनने का नियम भी चलता रहा। इसी प्रकार तीन-चार महीने केवल सितार वादन सुनने में बीते। इसके पश्चात् वल्लभदास जी ने एक दिन सितार उठाकर अण्णा के हाथ में दिया और, उसकी बैठक, पकड़, बाँए-दाहिने हाथ की उंगलियों की क्रियाएँ, दोनों हाथों के अँगूठे सितार पर कहाँ रखे जाते हैं इत्यादि सितार बाज की बारीकियाँ बताना आरंभ किया। अण्णा ने दो-तीन महीने आँखों से ये सब बातें देखी थीं, थोड़ा-सा अभ्यास भी किया था। अब उनको उसे सम-

झने तथा प्रयोग करने में क्या देर लगती। गुरुजी तो आश्चर्य चकित हुए। बोले, "अरे! तू तो पहले से ही सितार बजाता हुआ दीखता है। क्या बजाते थे?" अण्णा ने गोपाल गिरी बुआ के सितार पर थोड़ा अभ्यास करने की बात बतायी। अण्णा की शिक्षा नित्य नियम से आरंभ हुई। रोज रात्रि को १० बजे गुरुजी के यहाँ जाना और दो-ढाई घण्टे सितार का अभ्यास करके घर लौटना, यह क्रम तीन-चार वर्षों तक जारी रहा। सितार वादन में अण्णा ने पर्याप्त प्रगति की, यहाँ तक कि अण्णा का सितार वादन सुनने को संगीत प्रेमी लोग दूर-दूर से दौड़े आते थे। बंबई में एक उदयोन्मुख सितार वादक के नाम से प्रख्यात हो गए। कालेज की पढ़ाई तो चलती ही रही।

अण्णा ने सितार वादन का अभ्यास अपने माता-पिता से छिपाकर किया था। सभ्य समाज में संगीत का व्यवसाय तो दूर रहा, संगीत सीखना भी उस समय सुरापान, द्यूत, वेश्या-गमन की ही भाँति बुरा समझा जाता था। विशेषतया विद्यार्थी दशा में कोई संगीत सुनने-सीखने लगे तो उसको आवारा, बेकार जीवन नष्ट करने वाला, कुटुंब से, समाज से च्युत हुआ समझा जाता था। फिर यह कैसे हो सकता कि सितार सीखने के लिये अण्णा को माता पिता की सम्मति प्राप्त हो? वैसे अण्णा घर के बरामदे में सोते थे। घर का मुख्य दरवाजा बन्द करके बाकी सब लोग अन्दर सोते थे। अण्णा का रात्रि के समय गुरु के घर जाना-आना इस प्रकार सबसे छिपा रहा। सितार में, दो तीन वर्ष के पश्चात् जब पर्याप्त प्रगति हुई, अण्णा के सितार वादन के कार्यक्रम उनकी मित्र मंडली में होने लगे। तब एक रोज ऐसे ही एक कार्यक्रम में किन्हीं साहब ने नाना (पिताजी) को भी बुलाया था। नाना आए और एक ओर बैठ गए। सितार वादन प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम में रंग आ रहा था। सब श्रोतागण मुग्ध होकर झूम रहे थे कि नाना को देखते ही अण्णा घबड़ा गए और बजाते-बजाते रुक गए और दोनों पिता-पुत्र एक दूसरे को देखकर अवाक् रह गए। नाना ने कहा "बजाए जाओ, रुक क्यों गए? महफ़िल का रंग मत बिगाड़ो।" नाना स्वयं भी संगीत के प्रेमी तो थे ही। स्वरमण्डल बजाते थे। कुछ एकाध टुकड़ा अण्णा के गत-तोड़ों का आते-आते उन्होंने सुना ही था, जो उन्हें अच्छा लगा था। अब महफ़िल में आकर अपने पुत्र का सितार वादन सुनने का ही कुतूहल उनमें उत्पन्न हुआ हो तो क्या आश्चर्य? सितार वादन चालू रखने की अनुज्ञा देकर नाना मण्डली में बैठे रहे और उस समय का पूरा कार्यक्रम उन्होंने सुना। अन्त में "अच्छा अभ्यास किया है तुमने" इतना ही कहकर चले गए। इस महफ़िल में अण्णा ने ऐसा मन लगाकर सितार बजाया कि सब श्रोतागण मंत्र मुग्ध से हो गये थे। नाना भी अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए थे। पर अपने ही मुँह से अपने लड़के की उसके सम्मुख अधिक प्रशंसा करना उनको अच्छा नहीं लगा। अतएव "अच्छा अभ्यास किया है तुमने" इतना ही कहकर वे चल दिए। पर घर आकर अपनी पत्नी से अवश्य कहने लगे, "सुना तुमने, गजा बहुत अच्छा सितार बजाने लगा है। जाने किस प्रकार हम लोगों से छिपाकर कब इसने यह सब किया।" अम्माजी बोली, "हाँ ठीक है, पर उसको ताकीद देना कि कालेज के शिक्षाक्रम में सितार का दखल न हो"। नाना को यह बात ठीक जँची और अण्णा को सितार के पीछे लगकर अपनी कालेज की पढ़ाई न बिगाड़ने की सूचना मिली।

एकाध वर्ष पूना के डेक्कन कालेज में भी अण्णा साहब पढ़े थे। सन् १८८५ में बी० ए० तथा १८८७ में एल० एल० बी० उत्तीर्ण करके वकालत करने लगे। इस अवधि में नाना का देहान्त हो चुका था। अण्णा का विवाह हुआ, जिससे एक कन्या उत्पन्न हुई थी। पर विवाह के पश्चात् कुछ ही वर्षों में पत्नी एवम् पुत्री दोनों स्वर्गस्थ हो गईं और अण्णा साहब सदा के लिए एकाकी रह गए।

एल० एल० बी० उत्तीर्ण होने के पश्चात् एकाध वर्ष कराची हाईकोर्ट में उन्होंने वकालत की और बहुत सफलता के साथ की। एक ही दावे में उनको अपने मुवक्किल की ओर से लड़ना था। उस कार्य में सफलता प्राप्त कर के अण्णा साहब पुनश्च बंबई लौट आये और बंबई में वकालत करने लगे। विशेषतया फौजदारी के मामलों में अण्णा की वकालत बहुत सफल रही, क्योंकि वे जिरह में (क्रास एक्जामिनेशन में) बहुत कुशल थे। जिरह के द्वारा प्रतिपक्ष का संपूर्ण खंडन कर के अपना पक्ष निःसंदेह प्रस्थापित करते थे। कहते हैं कि अण्णा साहब ने ऐसा कोई दावा अपनी वकालत में हाथ में नहीं लिया जिसमें उन्होंने सफलता न प्राप्त की हो।

पत्नी एवम् पुत्री की मृत्यु के पश्चात् संगीत ही उनके जीवन भर का साथी रह गया था। घर की संपत्ति तो कोई बड़ी थी नहीं कि जिस पर जीवन भर निर्वाह हो सकता। अतएव वकालत का केवल चरितार्थ के लिये व्यवसाय करते हुए भी अण्णा साहब संगीत सेवा में लगे रहे।

इसी समय बंबई में "गायन उत्तेजक मंडली" नाम से एक संगीत संस्था चल रही थी। उस समय की बंबई में पारसी लोग हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत के बड़े प्रेमी एवम् आश्रयदाता थे। गायन उत्तेजक मण्डली संगीत में रुचि रखने वाले कुछ ऐसे ही धनी पारसी सेठियों की चलायी हुई संस्था थी। बंबई आये हुए सब बड़े-बड़े नामांकित गुणी गायक-वादकों के कार्यक्रम उनको यथायोग्य पुरस्कार देकर इस संस्था में आयोजित किये जाते थे। संस्था का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि उच्च श्रेणी का रागदारी गायन-वादन सुनने को मिले। उस समय के भारत प्रसिद्ध समस्त गायक-वादकों के कार्यक्रम इस मण्डली में हो चुके हैं।

कराची से लौटकर आते ही अण्णा साहब इस गायन उत्तेजक मण्डली के सभासद हुए।

गायक-वादकों के कार्यक्रमों के अतिरिक्त संगीत सीखने की इच्छा रखनेवाले सज्जनों के लिये एक संगीत शिक्षक भी इस गायन उत्तेजक मण्डली में नौकर रखे गये। इनका नाम श्री रावजी बुआ बेलबागकर था। बुआ साहब ध्रुपदिया थे। हैदराबाद दक्खन के जैनुल्ला खाँ नाम के एक उस्ताद थे, जिनके शिष्य बुआ साहब कहलाते थे। अण्णा साहब ने अब इन बुआ साहब से गायन सीखना आरंभ किया। कई वर्ष बुआ साहब के पास सीखकर लगभग ३०० ध्रुवपद अण्णा साहब ने कण्ठस्थ किए। इसी गायन उत्तेजक मण्डली में और एक उस्ताद अली हुसैन खाँ ख्यालिये नौकर थे। इनसे एवं इनके मामूँ विलायत हुसैन खाँ से सौ-डेढ़-सौ ख्यालों की भी शिक्षा अण्णा साहब ने ली। इस संगीत शिक्षा के अतिरिक्त गायन उत्तेजक मण्डली में होने वाले गायन-वादन के कार्यक्रम एवं और कहीं शहर में होने

वाली महफिलों में जाकर संगीत श्रवण का लाभ उठाने में कभी न चूकते थे। इस समय बहुत से पुरानी परंपरा के गायक-वादक जीवित थे। उनमें से कई बंबई प्रान्त में ही आ बसे थे। बड़े-बड़े भारत-विख्यात गायक-वादक दिल्ली, लखनऊ, आगरा, जयपुर, ग्वालियर, पटियाला, बड़ौदा, हैदराबाद दक्खन आदि रियासतों से बंबई आकर अपने गायन-वादन के कार्यक्रम पेश किया करते थे। नत्थन खाँ आगरे वाले, बन्देअली खाँ बीनकार, अलीहुसैन खाँ बीनकार, पन्नालाल बाजपेयी सितारिये, रहमत खाँ ग्वालियर वाले, बालकृष्ण बुआ, तानरस खाँ, अलीहुसैन तथा उनके भाई फतेह अली, हैदर खाँ, मुहम्मद खाँ, बन्ने खाँ आदि सब लोग बंबई आकर अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन कर गये थे। इनका गायन-वादन अण्णा साहब ने खूब सुना। बंबई नगर भर के संगीत प्रेमियों ने खूब संगीत श्रवण का आनन्द लूटा। पर इन हजारों-लाखों श्रोताओं में अण्णा साहब ही एक ऐसे श्रोता थे कि जिनको रागदारी संगीत में शास्त्रीय सुसंबद्धता दिखायी दी। हिन्दुस्तानी संगीत के राग एक परंपरागत नियमबद्ध प्रणाली के अनुसार गाए बजाए जाते थे, रागदारी गीत-प्रबन्ध भी स्थूल रूप से सुसंबद्ध परंपरागत बंदिश के अनुसार गाए जाते थे—यह सत्य उनको जँचा और रागदारी संगीत का अधिक सावधानी के साथ उन्होंने अभ्यास आरंभ किया। सर्वसाधारण में प्रचलित सुप्रसिद्ध ऐसे लगभग ७५ रागों का स्वरूप भारत भर में, जहाँ उत्तर भारतीय संगीत का प्रचलन था, एक-सा ही दिखायी दिया। अवश्य ही यह सत्य अण्णा साहब को गायन-वादन के प्रयोगों एवं उनके नियमों की जानकारी से प्रत्यक्ष हुआ। किन्तु इन स्वरूपों को समझाने वाला कोई ग्रन्थ उनको प्राप्त नहीं हुआ। गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों से जो कुछ पाठ मिलते थे उनकी एवं बाहर जलसों में अथवा गायक-वादकों की खानगी बैठकों में, जहाँ अवसर पाने पर उपस्थित होने में वे कभी चूकते नहीं थे; जो कुछ चर्चा होती थी, उसको नोट अवश्य किया करते थे। वे इन टिप्पणियों का अभ्यास एवं उन पर विचार करते थे। विचार करते-करते अण्णा साहब के मन में कई कल्पनाएँ आतीं, उनको उन्होंने अपने बही-खाते में लिखना आरंभ किया।

अपना संपूर्ण जीवन संगीत कार्यों के लिये अर्पण करने का निश्चय इसी समय से अण्णा साहब के मन में हुआ। अपना जीवन निर्वाह आमरण स्वाधीन रहे, किसी समय अपना बोझ किसी पर न पड़े, इस हेतु वे लगभग सन् १९१० तक वकालत करते रहे। पत्नी एवं इकलौती कन्या दोनों का स्वर्गवास होने पर अपनी अधेड़ अवस्था में अण्णा साहब कौटुम्बिक उलझनों से विमुक्त हो चुके थे। उनका अपना कोई न रहा। संगीत को ही उन्होंने अपनाया, गले लगाया और जीवन भर उसका साथ न छोड़ा। अपना संपूर्ण प्रेम भंडार संगीत के रागों को ही अर्पण कर दिया और उसी की सेवा में पूरा जीवन बिताया। १९१० तक वकालत के द्वारा जीवन भर अपना उदर-निर्वाह बिना किसी के आगे शर्मिंदा हुए चल सके, इतना द्रव्य-संचय होने के पश्चात् उन्होंने वकालत का व्यवसाय सदा के लिये छोड़ दिया और तन-मन-धन से संगीत की ही सेवा में जुट गये।

वे अब तक संगीत की क्रियात्मक शिक्षा सितार पर वल्लभदास दामुलजी से पा चुके थे और गायन का अभ्यास गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों से चल रहा

था। पर इस संगीत का पूर्वकालीन रूप एवं उसका इतिहास समझने की उत्कंठा हेतु अण्णा साहब ने संगीत पर जो भी पुस्तकें संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगाली, तेलगु, तमिल में उस समय उपलब्ध थीं, उनका संग्रह कर अध्ययन आरंभ किया। संस्कृत में नारदी-शिक्षा, माण्डूकी-शिक्षा, भरत-नाट्यशास्त्र, संगीतरत्नाकर, संगीत-दर्पण, रागविबोध तथा संगीत-पारिजात ये ही प्राचान ग्रन्थ उस समय उपलब्ध थे। अंग्रेजी ग्रन्थ तो केवल ध्वनिशास्त्र के सिद्धान्तों के विषय में उपयुक्त थे। एक-दो अंग्रेजी ग्रन्थ, कैप्टेन विलर्ड, चिन्नुस्वामी मुदलियार के लिखे हुए अवश्य थे। शेष अंग्रेजी ग्रन्थों में सब जानकारी पाश्चात्य संगीत पर ही थी। बंगला ग्रन्थों में राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर तथा कृष्णधन बनर्जी की लिखी हुई पुस्तकें थीं। मराठी में कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं थी कि जिससे संगीत की शास्त्रीय जानकारी मिलती। हिन्दी में राधागोविन्द संगीतसार एवं संगीत दर्पण के भाषान्तर उपलब्ध थे। गुजराती में आदितराम तथा डाह्याभाई दलपतराम की लिखी हुई पुस्तकें थीं। इन सब का ध्यानपूर्वक अभ्यास करके इसी निर्णय पर अण्णा साहब पहुंचे कि प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत ग्रन्थोक्त संगीत से बहुत कुछ प्रगत हुआ है किन्तु उसमें जो-जो कुछ नियम-धर्म माने एवं रखे जाते हैं उनको समझाने वाले ग्रन्थों की आज अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार लगभग १५ वर्ष तक गायन उत्तेजक मण्डली के शिक्षकों के पास गायन कला सीखते रहे और घर पर ग्रन्थों का अभ्यास करते रहे। प्रचलित संगीत में किसी आधार ग्रंथ अथवा किसी सर्वमान्य प्रणाली एवं गायन शैली के न होने के कारण कई राग रूपों में तथा रागदारी गीत प्रबन्धों के पाठों में मतभेद एवं क्रिया भेद होना अनिवार्य था। इन दस-पंद्रह वर्षों की अवधि में तथा आगे अपने जीवन के अन्तिम २५-३० वर्षों में जो महान् कार्य अण्णा साहब ने किया उसके लिये उनकी मनोभूमि किस प्रकार तैयार हो रही थी; वह उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत करने से अधिक स्पष्ट होगी। मूल लेख मराठी में है। उसका यह हिन्दी भाषान्तर है।

"संगीत-विद्या सीखना अर्थात् संगीत में बताये हुये राग सीखना यह बात तो स्पष्ट ही है। आज का हमारा समाज संगीत में बिलकुल अनाड़ी है ऐसी बात नहीं है। जनता में संगीत तो प्रचलित है, पर संगीत के शास्त्रीय नियमों का ज्ञान इतना नहीं है जितना कि होना चाहिए। संगीत शास्त्र से हमारा आशय इतना ही है कि उसमें आजकल के प्रचलित राग-रागिनियों का सुन्दर वर्गीकरण हो तथा तत्सम्बन्धित स्पष्ट नियम भी हों। यह स्पृहणीय परिस्थिति हमारे आज के संगीत की नहीं है यह सभी मानते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ हम लोग आज गाते-बजाते हैं वह अनियमित एवं अव्यवस्थित है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जो हम लोग गाते हैं उसके नियम उत्तम रीति से समझा देने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ।

"अपना संगीत बहुत पुराना है यह बात सब मानते हैं। प्राचीन ग्रन्थ भी हम लोगों को मिल सकते हैं यह भी बात सही है। पर हमारा संगीत ठीक उन प्राचीन ग्रन्थों जैसा ही आज भी प्रचलित है, यह नहीं कह सकते। तथापि हमारे संगीत में प्राचीन वर्गीकरण के सिद्धान्त अवश्य लागू किये जा सकते हैं। रुचि-परिवर्तन के अनुसार रागस्वरूपों में भी कहीं-कहीं विभिन्नता भले हुई हो, पर रचना के तत्व तो पुराने ही हैं, यह हम लोग कह सकते हैं।"

और एक स्थान पर अण्णा साहब कहते हैं :

"कुछ लोग ऐसा दुराग्रह कर लेते हैं कि संसार भर के संगीतों में हमारा हिन्दुस्तान का संगीत ही सबसे अच्छा है। दूसरे किसी भी देश में ऐसा उच्च श्रेणी का संगीत न पहले कभी था न अब है। उनका यह विचार पूर्णतया: यथायोग्य और न्यायोचित नहीं है। इतिहास से यह विदित होता है कि आर्य लोगों की सभ्यता बहुत प्राचीन थी। वे लोग सब प्रकार की विद्याओं में बहुत कुछ प्रगति कर चुके थे। उन्होंने अपना संगीत नियमों से सुव्यवस्थित कर रखा था। यह बात मान्य है कि जिस समय आर्यों का संगीत भारत में पूर्ण स्वरूप में था उस समय पश्चिमी अथवा अन्य किसी भी देश में संगीत शास्त्र का ज्ञान भली-भाँति न था ऐसा कहने के लिये आधार नहीं मिलता। इतने प्राचीन काल में भी अपने यहाँ संगीत बहुत उन्नत अवस्था में था—इस बात पर हमें गर्व होता है। पर प्रश्न यह है कि वे कौन-सा और किस प्रकार से संगीत गाते थे? कितने स्वर गाने के योग्य मानते थे? उनके गाने में जो सिद्धान्त संगीत के दिखाई देते हैं वे विज्ञान शास्त्र की दृष्टि से कहाँ तक शुद्ध हैं इत्यादि बातों पर क्या हम कुछ विचार भी न करें? मैं समझता हूँ, वैसा करने में कोई हानि नहीं है। हमारे वेद संसार में सब से प्राचीन साहित्य के प्रतीक माने जाते हैं। तब भी हम लोग आजकल उनके विषय में क्या समालोचना नहीं करते हैं? वेदों के काल में पंचमहाभूतों की पूजा होती थी, अत: आज भी उसी प्रकार होनी चाहिए ऐसा आग्रह हम लोग करें तो भी धर्म तथा ईश्वर के विषय में उस काल में हमारे पुरखों की कल्पनाएं वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर आज उतनी खरी नहीं उतरेंगी। हम केवल संतोष भर कर सकते हैं। हमारे प्राचीन संगीत में कौन-कौन-सी बातें उत्तम, और कौन-सी गौण हैं, इसका शोध लगाना हम लोगों का कर्त्तव्य है। हम लोग जानते हैं कि संसार के सब राष्ट्रों ने अपने-अपने संगीत को वैज्ञानिक तत्वों के ही आधार पर सुव्यवस्थित कर के उच्च श्रेणी पर पहुँचाया है। युरोपियन-संगीत पर हम लोग चाहे जितना हँसें पर उसकी कीमत हम रत्तीभर घटा नहीं सकते। हमारे प्राचीन सिद्धान्तों को समझने के लिए पाश्चात्य शास्त्र सिद्धान्तों का उपयोग हम लोगों द्वारा होता है यह बात अनुभव-सिद्ध है। विज्ञान मीमांसा में पाश्चात्य राष्ट्र बहुत कुछ प्रगत हैं, यह बात हमारे यहाँ सब विद्वानों को मान्य है। फिर संगीत में ही वे केवल जड़ बुद्धि हैं, संगीत के स्वरों से अनभिज्ञ हैं, यह कैसे कहा जा सकता है। हम लोग यह भी देखते हैं कि ध्वनिशास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान हम लोगों को कहाँ से मिला है। पाश्चात्य ध्वनिशास्त्र ही के आधार पर हम लोग ध्वनि की लहरें आदि की बातें करते हैं, इस वस्तु स्थिति को भूलना नहीं चाहिए।"

अण्णा साहब संगीत का अभ्यास एवं ग्रन्थों का पठन करते थे और उनके मन में जो विचार आते रहते थे उनको न केवल अपने लिए कापी में लिख लेते थे, वरन् वे विचार गायन-उत्तेजक-मण्डली के सभासदों को भी पढ़कर सुनाते थे। संगीत पर इस प्रकार के उनके व्याख्यान बराबर हुआ करते थे। इन्हीं व्याख्यानों के फलस्वरूप अण्णा साहब की "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" नामक संगीत-शास्त्र चर्चा की पुस्तकमाला तैयार हुई। इसको आरम्भ करते हुए अण्णा साहब लिखते हैं :

"आजकल प्रचार में हिन्दुस्तानी संगीत के नाम से जो संगीत हम लोगों के सन्मुख आता है वह ग्रन्थों में बताए हुए संगीत से बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है यह बात तुरंत समझ में आ सकती है। अब इस समय उस प्राचीन संगीत को पुनः प्रचार में लाना असंभव है। पर इसमें सुधार बहुत कुछ हो सकता है। कहीं-कहीं हम लोग देखते हैं, हमारे कुछ राग ग्रन्थों से बहुत अलग नहीं हुए हैं। ऐसे रागों को यदि हम लोग नियम बनाकर सुव्यवस्थित करें तो वे जनता में स्वीकृत होंगे; क्योंकि उनके विषय में ग्रंथों में प्रमाण मिल सकेंगे। और इस प्रकार से सुप्रमाणित संगीत कम से कम सुशिक्षित जनता में प्रिय एवं मान्य अवश्य होगा। इसी कल्पना से यह निबन्ध हमने लिखना आरम्भ किया है। प्रस्तुत लेख प्रारम्भिक है। कोई बड़ा गहन शास्त्र हम लिखने जा रहें हैं, यह बात नहीं है। यह आदर्श ग्रन्थ है यह दावा भी हम नहीं कर रहे हैं। हमारे आज के गायक, प्रचलित राग किस प्रकार गाते हैं तथा ये राग किन युक्तियों के द्वारा सीखे एवं याद किये जा सकते हैं; इस बात को लक्ष्य करके यह लिखा जा रहा है। यह कल्पना सर्वांश में निर्दोष तो न होगी, क्योंकि नयी है। हो सकता है, कहीं-कहीं लोकमत के विरुद्ध हो। पर मन में आये हुए विचार लिख रखने से गायन उत्तेजक मंडली के मित्रों के लिये इनका उपयोग हो सकेगा, ऐसी सूचना मुझे दी गई; अतएव लिख रहा हूँ। लेख केवल अपने मित्रों के उपयोग के लिये लिखे हैं। अतएव उनमें अनुक्रम का विचार नहीं किया गया है। जो-जो विचार जैसे-जैसे मन में आते गये, लिखे हैं। फिर से कभी इनको लिखने का अवसर प्राप्त होगा तो सब बातें ठीक क्रमानुसार लिखने का विचार है। अपने अप्रचलित संगीत को शास्त्र-सम्मत एवं सुव्यवस्थित करने की उत्कंठा है, पर यह कार्य बहुत कठिन है यह भी मैं जानता हूँ।"

संगीत का क्रियात्मक एवं शास्त्रीय अभ्यास करने के पश्चात् भी उनका समाधान न हुआ। तब उन्होंने संगीत शास्त्र के अनुसंधान की दृष्टि से समस्त भारत की यात्रा की। जितनी जानकारी इस विषय पर उपलब्ध थी उतनी संग्रह की और उसके पश्चात् ये उपरोक्त लेख लिखे गए। उन्होंने पहले पश्चिम में गुजरात, काठियावाड़ की यात्रा की। सूरत, भड़ौच, बड़ौदा, नवसारी, अहमदाबाद, राजकोट, बीकानेर, जामनगर, जूनागढ़, भावनगर आदि शहरों में हो आये। तत्पश्चात् दूसरी यात्रा सन् १९०४ में दक्षिण की हुई। जिसमें मद्रास, मैसूर, तंजौर, मदुरा, त्रिवेन्द्रम, इट्टियापुरम्, रामेश्वर, बैंगलोर आदि शहरों में जाकर वहाँ संगीतज्ञ विद्वानों के साथ संगीत पर चर्चा की और दक्षिण संगीत प्रणाली का उस समय का शुद्ध-स्वर-मेल तथा उस प्रणाली का पर्याप्त ज्ञान संपादन किया। विशेषतया इट्टियापुरम् में श्री सुब्रह्मण्य उपनाम सुब्राम दीक्षित से उनको पंडित व्यंकटमखी की मेलप्रक्रिया का एवं तत्कालीन दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली का स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ। व्यंकटमखी की चतुर्दण्डिप्रकाशिका का हस्तलेख भी उनको यहीं से प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ, जैसे रामामात्य का स्वर-मेल-कलानिधि, तंजौर के तुलाजीराव भोंसले का लिखा हुआ संगीत-सारामृतोद्धार, रागलक्षणम् इत्यादि हस्तलिखित ग्रंथ तंजौर, मैसूर, मद्रास के पुस्तकालयों से प्राप्त किए और जिन्हें बाद में प्रकाशित भी किया। दाक्षिणात्य संगीत के गायन-वादन कार्यक्रम भी अण्णासाहब ने वहाँ की संगीत सभाओं में

जाकर और संगीतज्ञ विद्वानों को अपने घर पर बुलाकर पर्याप्त सुने। ऐसी ही एक संगीत-सभा मद्रास में हुई थी जहाँ पर दाक्षिणात्य संगीत का गायन प्रयोग उन्होंने सुना था। इस संगीत का वर्णन करते हुए अरुणा साहब लिखते हैं :

"मेरे मित्र·····ने "मद्रास मेल पत्रिका" में एक गाने की महफिल की खबर पढ़ी और मुझे बताई। यह गाना उसी दिन शाम को साढ़े छः बजे रामास्वामी स्ट्रीट में गान-मनोहरी एसोसिएशन की तरफ से होने वाला था। मुझे रामास्वामी स्ट्रीट कहाँ पर है, यह पता नहीं था। उन महाशय से मैंने पूछ लिया और उसी पते से चला गया। ऐसी महफिल में बिना बुलाये जाना ठीक न था। पर हम लोगों को मद्रास में अधिक दिन रुकना न था और ऐसा मौका फिर न मिलेगा, यह सोच कर महफिल के ठिकाने पर जा पहुँचा। यह भी विचार किया कि टिकट बिकता हो तो लेकर जाऊँगा। मैं दरवाजे पर जा पहुँचा तो एक साहब ने सीढ़ी की ओर इशारा करके कुछ तमिल भाषा में कहा। मैं ऊपर जाकर जहाँ सब लोग बैठे थे उनमें बैठ गया। मुझे कोई पहिचानता तो था नहीं और न किसी ने मेरी कोई पूछताछ ही की। बाद में मैंने सुना कि यह महफिल ऐसो-सिएशन के मेंबरों ने चंदा करके बुलवायी थी।

"गानेवाली कोई औरत थी। गाना मजे का हुआ। हमारे यहाँ के अनेक रागों की छायाएँ उसके रागों में दिखायी देती थीं। पर उसके राग कौन से थे, यह मैं पहचान न पाया। स्वर तो समझ में आते थे, पर लक्षण याद न होने से राग का नाम कह नहीं सकता था। पूछ भी न पाता था। क्योंकि एक तो मैं बिना बुलाये गया हुआ था, तिस पर यह धृष्टता करना ठीक न होगा यह सोच कर किसी को तकलीफ देना मैंने ठीक न समझा।

"उसका पहला राग सारङ्ग-सा लगता था। पर उसमें धैवत था और ऋषभ में कुछ कोमल गंधार-सा जान पड़ा। शायद उनके यहाँ का नायकी अथवा श्रीराग हो। यहाँ पर नायकी एक लोकप्रिय राग कहलाता है। मैंने आचार्य जी के यहाँ भी यही राग सुना था। यहाँ कान्हड़ा शंकराभरण यानी बिलावल ठाठ का राग करके गाया जाता है। दूसरी एक बात मैंने उसके गाने में देखी। तीव्र म, कोमल ध, नि, सां, कोमल ध, रीं·····सां रीं गं रीं सां ऐसा एक अजीब सुरबेवरा, वह बाई एक चीज में गाती थी। और वह बुरा नहीं लगता था। हालांकि तीव्र ऋषभ और कोमल ध उस राग में थे। खूबी यह थी कि सां रीं गं रीं सां और म ध निसां इनको अलग-अलग रखकर वह अपनी बढ़त करती थी। बीच-बीच में योग्य स्वर-संगतियाँ कर के इन दोनों में जोड़ देती थी। उस समय ऋषभ उतरा हुआ लगता था, पर आरोही में खुला तीव्र ऋषभ आता था। इसलिये परज से अलग ही वह राग मालूम होता था। इसके बाद तीसरी चीज जो उसने गायी, उसमें जोगिया का स्वरूप दिखायी देता था। यहाँ के कनकांगी आदि राग जो बहत्तर मेलों के पहले चक्र में हैं, कुछ-कुछ जोगियां जैसे मालूम होते हैं। क्योंकि उनमें दोनों ऋषभ तथा दोनों धैवत अलग-अलग नाम देकर लिये जाते हैं, ऐसा उनकी रचना से जान पड़ता था। इस चीज में आरोही में तीव्र नि और अवरोह में कोमल नि लगती थी। ठाठ तो खैर वहीं था पर ज़ोर धैवत पर न था। मध्यम पर ठहर कर षड्ज पर आना होता था। उस गायिका

की आवाज बुलन्द थी। कभी-कभी जोर-जोर से चिल्लाती थी तब जरा बुरा लगता था। पर सुननेवाले तो उसी जगह सुन्दर-सुन्दर कह के तारीफ करते थे। कुछ देर गाने के बाद आलाप करने की फरमाइश किसी ने की। वे आलाप कान्हड़ा, भैरव, पीलू की तरह थे। साथ करनेवाला बेला खूब मीठा बजाता रहा। मृदंग जो उनके यहाँ तबले की जगह बजाया जाता है, ठीक उसी तरह बज रहा था जैसे कि हमारे यहाँ तवायफों के गाने के साथ बजता है। पंजाबी ठेका और धीमा त्रिताला ही अधिकतर बजते रहे। मेरे विचार में वैसे तालों में हमारे यहाँ के तबलिये बहुत मजे का तबला बजाते हैं। मुझे गाना बहुत पसंद आया यह मैं जरूर कहूंगा। यह बाई पहले मैसूर दरबार में नौकर थी। बाद में यहाँ चली आयी थी। यह बात वहाँ के लोगों ने मुझे बतायी। गाते समय किसी तरह के असभ्य हाव-भाव यह बाई न करती थी। शायद उसकी चीज़ भक्तिप्रधान की थी।"

किस सावधानी के साथ अण्णा साहब गाना सुनते थे यह बात उक्त अवतरण से सिद्ध होती है।

कुछ गुणी लोगों को अपने मकान पर बुलाकर दाक्षिणात्य संगीत तालप्रणाली की भी जानकारी उन्होंने प्राप्त की। वहाँ चलते हुए ध्रुव, मठ, रूपक, झंप, अठ, एकताल एवं त्रिपुट ये सात ताल तथा हरएक ताल की विभिन्न जातियों का ज्ञान संपादन किया।

कराची में वकालत करते थे तब एकाध बार हैदराबाद (सिंध) शिकारपुर, लाहौर तथा कच्छ हो आए थे।

सन् १९०७ में अण्णासाहब ने पूरब की यात्रा की। इस यात्रा में वे नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथपुरी, विजयानगरम् तथा दक्खन हैदराबाद गये थे। कलकत्ता में स्वर्गीय राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर से भेंट हुई। अण्णासाहब के संगीतविषयक विचार एवं प्रयत्नों पर राजासाहब बहुत प्रसन्न हुए। दोनों का स्नेह-संबंध दृढ़ हुआ। दोनों ने एक दूसरे के प्रयत्नों में सहायता देने का निश्चय किया। इन दोनों का पत्र व्यवहार राजा साहब के जीवन भर चलता रहा। और भी कई संगीत प्रेमी तथा संगीत व्यवसायी सज्जनों से अण्णासाहब की भेंट एवं संगीत चर्चा हुई। वहाँ के गायक-वादक गुणी जनों के कार्यक्रम सुने।

बम्बई में अपने घर पर संगीत ग्रन्थों का अध्ययन चलता रहा एवं गायन उत्तेजक मण्डली में तथा अन्यत्र उस्तादों से परम्परागत रागदारी चीजों का संग्रह करते रहे। गायन उत्तेजक मण्डली में अब बम्बई के प्रख्यात सारंगी वादक नजीर खाँ नौकर हुए थे। इन खाँ साहब की अण्णासाहब पर बहुत श्रद्धा थी। शास्त्रग्रन्थ पढ़कर एवं परंपरागत रागदारी गीतों का संग्रह इकट्ठा कर के प्रचलित संगीत के संबन्ध में कुछ सिद्धांत अण्णासाहब ने निश्चित किये थे, और इन सिद्धांतों को वे व्याख्यान द्वारा गायन उत्तेजक मण्डली में समझाते थे। नजीर खाँ साहब इन व्याख्यानों को सुनकर एवं अण्णासाहब के साथ प्रत्यक्ष चर्चा कर के संगीत-शास्त्र में पर्याप्त रस लेने लगे। खाँ साहब के एक शिष्य वाड़ीलाल शिवराम नाम के बम्बई की गुजराती नाटक मंडली में गीत रचना एवं संगीत दिग्दर्शन का कार्य करते थे। साथ-साथ खाँ साहब से राग-

दारी संगीत की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। इनको नज़ीर खाँ साहब ने अण्णा-साहब के यहाँ ले जाकर इनका परिचय कराया। वाड़ीलाल जी बम्बई में एक संस्कृत पाठशाला में पुरानी व्याकरण प्रणाली के अनुसार संस्कृत व्याकरण एवं साहित्य का भी अभ्यास किये हुए थे। अण्णासाहब इस समय संगीत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पढ़ ही चुके थे। वाड़ीलाल जी को भी ग्रन्थ समझने की उत्कण्ठा हुई। अण्णासाहब के पास उन्होंने ग्रन्थों का अध्ययन और संग्रह की हुई परंपरागत रागदारी चीजों का शिक्षण आरम्भ किया। वाड़ीलाल जी गायन उत्तेजक मण्डली में जाने लगे। अण्णा-साहब एवं वाड़ीलाल जी का यह गुरु शिष्य सम्बन्ध इतना गाढ़ एवं चिरस्थायी रहा कि वाड़ीलाल जी अण्णासाहब को एक पूज्य देवता मानते हुए उन्हीं के नाम का जप करते रहे। मैं स्वयं वाड़ीलाल जी के सम्पर्क में कई वर्ष रहा। वे खुली महफिल में गाना पसन्द नहीं करते थे। अपने को मुजरे करनेवाला गवैया कहलवाना नहीं चाहते थे। सिखाने का कार्य अवश्य करते थे। मैंने उनको संगीत विद्यार्थियों को सिखाते हुए देखा है। अण्णासाहब की गायनशैली एवं रागों का प्रयोग जिसमें रागदारी संगीत की भव्यता एवं माधुरी ओत-प्रोत थी, वाड़ीलाल जी के कण्ठ से हू-ब-हू प्रकट होती थी। विशेषतः चीजें कहने का उनका ढङ्ग, स्वरों का लगाव, चीज के टुकड़ों का जोड़ लगाना, मुकामात (विश्रांतिस्थान) सुनते ही बनता था।

उस्ताद नज़ीर खाँ बंबई में भिंडी बाजार में रहते थे। वहीं वाड़ीलाल जी जाया करते थे। वहीं कहीं पास ही में प्रख्यात नत्थन खाँ गायक के ज्येष्ठ सुपुत्र मुहम्मद खाँ भी रहते थे। इनका आना-जाना नज़ीर खाँ के यहाँ होता था। वाड़ीलाल जी का भी इनसे परिचय हुआ। इन दोनों का अच्छा स्नेह संबन्ध रहा। मुहम्मद खाँ के पास चीजों का संग्रह अच्छा था ऐसी उनकी तारीफ अब भी लोग करते हैं। पर वे सिवाय अपने ही लड़कों को छोड़ करके और किसी को नहीं बताते थे। एक दिन मुहम्मद खाँ वाड़ीलाल जी के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में दूसरे छोर पर एक और कोई उस्ताद जा रहे थे। उनको देखकर मुहम्मद खाँ ने उनकी ओर इशारा करते हुए वाड़ीलाल जी से कहा, "वह देखो, कौन जा रहे हैं ? बड़े घरानेदार उस्ताद हैं। चीजों का भंडार ही भंडार है इनके पास, इसीलिये कोठीवाल कहलाते हैं। मुहम्मद अली खाँ साहब जयपुर वालों के पुत्र हैं। आशिकअली नाम है इनका। तुम्हारे रावसाहब (अण्णा साहब को नज़ीर खाँ, रावसाहब कहा करते थे) को जिन चीजों के सीखने का शौक है वे इनके पास मिल जाएँगी। चलो तुम्हारी पहचान उनसे करा दूँ।" वाड़ीलाल जी को उन उस्ताद के पास ले जाकर उनकी पहचान करा दी। उस्ताद आशिकअली खाँ उस समय संभवतः आर्थिक संकट में थे और इसीलिये जयपुर से बंबई आये थे। वाड़ीलाल जी तुरन्त अण्णासाहब के यहाँ गए और आशिकअली खाँ की बात उनको बतायी। अण्णासाहब ने उनको ले आने को वाड़ीलाल जी से कहा। दूसरे दिन वाड़ीलाल जी उस्ताद आशिकअली को अण्णासाहब के घर ले गये। बहुत देर तक बातचीत होती रही। रागों पर खूब चर्चा हुई और हर एक राग की दस-दस पाँच-पाँच चीजें उस्ताद ने अण्णा साहब को सुनायीं। बहुत प्रसन्न हुए। उस्ताद को पर्याप्त वेतन देकर चीजें सीखना आरंभ किया।

अण्णासाहब उस्ताद की चीजें अपनी स्वरलिपि में लिखकर फिर उन्हें गाकर सुनाते गये। उस्ताद के साथ कई बार एक-एक चीज दुहराने के पश्चात् उनको वह गाकर सुनाते। उस्ताद द्वारा प्रमाणित होने के पश्चात् ही अण्णासाहब उनको अंतिम रूप से लिपिबद्ध करते थे। यह क्रम कई महीने चलता रहा। इधर बंबई के उस्तादों में खलबली मची कि भातखंडे आशिक अली को लूट रहे हैं। यह सब वार्ता जयपुर तक उस्ताद के पिता मुहम्मद अली साहब के पास पहुँचायी गयी। बड़े मियाँ के क्रोध का पार न रहा। तुरंत जयपुर से बंबई चले आये। इधर अण्णासाहब ने उस्ताद आशिक अली की चीजें कण्ठस्थ तो की ही थीं, उनको स्वरलिपिबद्ध भी कर लिया था। पर इसके अतिरिक्त उनको ग्रामोफोन पर भी रिकार्ड कर के रखा। मुहम्मद अली खाँ साहब बंबई पहुँचे और जाते ही अण्णासाहब के घर आशिक अली खाँ के साथ पहुँचे। और आशिक अली खाँ के द्वारा सिखाई हुई चीज अण्णासाहब के गले से सुनने की इच्छा प्रकट की। अण्णासाहब ने सब चीजें सुनायीं, रेकार्ड भी सुनाए। सुनकर उस्ताद क्रोध से थर-थर काँपने लगे। आशिक अली खाँ को बहुत भला-बुरा कहा। पर अण्णासाहब ने बड़े मियाँ को समझा कर शान्त किया। "शिष्यस्तेऽहम् शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" कहकर संगीत के संबंध में आज तक किया हुआ अपना कार्य, प्रचलित रागदारी संगीत को इन्हीं चीजों के आधार पर शास्त्र-सम्मत नियमबद्ध करने की आवश्यकता, तत्संबंधी अपने विचार इत्यादि सब उनको समझाया। "सच कहते हो पंडित जी" बड़े मियाँ ने कहा। "हम लोग जो गाते बजाते हैं उसके कायदे कहीं लिखे हुए तो हैं नहीं। घरानों-घरानों में देखता हूँ तो चीजों की तालीम में तफ़ावत दिखायी देती है। अब किसका गाना गलत और किसका सही, यह कहना मुश्किल हो गया है। मैं अपने ही घराने की ये चीजें जब बाहर कहीं सुनता हूँ तो हैरान रह जाता हूँ। मेरे घराने की चीज पहचानना मेरे ही लिये दुश्वार हो जाता है। आपने तो उनको सही-सही सीखा है और वैसा ही गाते हैं, इससे मुझे बड़ी तसल्ली हुई। अब मैं अपनी ओर से आपको कुछ चीजें नज़र करूँगा।" मुहम्मद अली खाँ साहब कई दिन बंबई में रहे और बहुत-सी चीजें उन्होंने अण्णासाहब को सिखाईं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुहम्मद अली खाँ साहब की भी सेवा यथाशक्ति अण्णासाहब ने की। आशिक अली खाँ साहब को मैंने सन् १९१४ में केवल एक बार देखा था। इन दोनों पिता-पुत्रों की जयपुर के मनरंग घराने की लगभग तीन सौ चीजें अण्णासाहब ने स्वरलिपिबद्ध एवं रेकार्ड करके रखीं। कुछ अप्रसिद्ध रागों की चीजें एवं कायदे भी इन उस्तादों से प्राप्त किए। इन चीजों को सीखकर अण्णासाहब को बहुत संतोष हुआ, उनका आत्मविश्वास बहुत कुछ बढ़ा। उनका संकल्पित कार्य अब आगे बढ़ाया जा सकता था। अधिकृत रूप से संगीत पर अपने विचार व्यक्त कर सकने की स्थिति होने पर उन्हें बड़ा साहस हुआ। मुहम्मद अली खाँ साहब की एवं अन्य चीजें जो अण्णासाहब ने संग्रह की थीं, उन पर जुगल-बंदियों के रूप में उन्होंने रागों के लक्षणगीत रचने आरंभ किए। लक्षणगीत वे गीत होते हैं जिनमें उनके रागों के नियम, थाट, रागों में लगने वाले तीव्र कोमलादि स्वर, वर्ज्य स्वर, रागजाति, राग में लगते हुए स्वरों की संख्या के अनुसार षाडव ओडव, संपूर्णादि, गाने का समय, वादी-संवादी, विशेष रागवाचक स्वर संगतियाँ इत्यादि समझाए जाते हैं। ऐसे कुछ

लक्षणगीत (मुहम्मद अली खाँ साहब की चीजों की जुगलबंदियाँ) अण्णासाहब ने उनको गाकर सुनाए। सुनकर खाँ साहब बहुत प्रसन्न हुए। अण्णासाहब ने नज़ीर खाँ को भी ये लक्षणगीत सुनाए। नज़ीर खाँ को भी वे बहुत प्रिय लगे। उन्होंने सीख भी लिये। बंबई में कई गायिकाओं को, जो उनसे सीखती थीं, उन्होंने ये लक्षणगीत सिखाये। वे उनको महफिलों में गाती भी रहीं। नजीर खाँ ने अण्णासाहब से शास्त्रीय जानकारी पर्याप्त संग्रह की थी, कुछ संस्कृत श्लोक भी कण्ठस्थ किये थे। इससे उनकी धाक पेशेवर गायक-वादकों में जमी।

वाड़ीलाल जी ने कुछ समय उदयपुर के जाकिरुद्दीन खाँ साहब से भी नोम् तोम, आलापादि की शिक्षा पाई थी। उन्होंने अण्णासाहब से उनकी तारीफ की। अण्णासाहब ने इनका गाना सुनने का संकल्प किया और अपनी उत्तर भारत की यात्रा के समय में उदयपुर जाना निश्चित किया।

पूर्व भारत की यात्रा कर के थोड़े ही महीनों के पश्चात् अण्णासाहब उत्तर भारत की यात्रा पर चल पड़े। इस यात्रा में वे जबलपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, मथुरा, आगरा, लखनऊ, दिल्ली, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर हो आये। इलाहाबाद में स्वर्गीय पंडित श्रीकृष्ण जोशी से परिचय हुआ, जो उस समय एक बड़े सरकारी ओहदे पर कार्य कर रहे थे और रागदारी संगीत के निःसीम भक्त थे। यह परिचय प्रीतमलाल गुसाईं नामक एक संगीत के विद्वान् के यहाँ हुआ। गुसाईं जी के यहाँ संगीत पर जो चर्चा, जो प्रश्नोत्तर हुए; वे सब उक्त जोशी जी की उपस्थिति में ही हुए थे। प्रीतमलाल जी से पूछे हुए प्रश्नों से एवम् उन प्रश्नों पर हुई दोनों की चर्चा से श्री जोशी जी को अण्णासाहब के संगीत क्षेत्र में किये हुए परिश्रम की पूर्ण कल्पना हुई और उन्होंने अपने यहाँ उनको निमन्त्रण दिया। जोशी जी के यहाँ भी खूब चर्चा हुई। जोशी जी स्वयम् एक सुशिक्षित विद्वान् एवं अनुभवी पुरुष थे। अण्णासाहब ने प्रचलित रागदारी संगीत का रूप, उस पर एक शास्त्र-ग्रंथ निर्माण करने की आवश्यकता, और इसी दिशा में अपने किये हुए प्रयत्न, पुराने शास्त्र-ग्रंथों का निजी अध्ययन, परंपरागत रागदारी गीतों का संग्रह जो कि इस नये शास्त्रग्रंथ के लिये मुख्य आधार था—इन सब बातों पर अपने विचार, संगीत पर अनुसंधान सम्बन्धी यात्राओं का उद्देश्य इत्यादि जोशी जी को समझाया। अपने रचे हुए लक्षणगीत भी सुनाए। जोशी जी को यह सब सुनकर इतना पसंद आया कि वे अण्णासाहब के एक परम मित्र बन गये। दरभंगा के लोचन कवि की राग-तरंगिणी अण्णासाहब को इन्हीं जोशी जी के प्रयत्नों से प्राप्त हुई।

इलाहाबाद, मथुरा तथा दिल्ली में अण्णासाहब को कुछ संगीत विद्वानों के बड़े विचित्र एवं मनोरंजक अनुभव हुए। ग्रन्थ-वाक्यों का अर्थ जैसा कुछ समझ में आया अपनी मनगढंत व्याख्या उस पर लादकर जो संगीत शास्त्र की इमारतें खड़ी की गई थीं, वे उन्होंने देखीं। उनके साथ खूब चर्चा कर के उनकी दिशामूल कहाँ किस प्रकार हो रही थी, वह अण्णासाहब ने उन्हें समझाया। इस यात्रा में बड़े-बड़े गुणी गायकों के गायन-वादन प्रयोग भी सुने। उन गायकों के साथ राग-रूपों पर चर्चा की। उदयपुर में उस्ताद ज़ाकिरुद्दीन खाँ तथा उनके भाई अल्लाबंदे खाँ का आलाप गान खूब जी भर सुना।

इस प्रकार का आलाप गान अण्णासाहब ने पहले कभी सुना नहीं था। आलाप गान बहुत सुस्वर एवं मधुर प्रतीत हुआ। अण्णासाहब को विशेषतया जाकिरुद्दीन खाँ साहब का कण्ठस्वर एवं स्वर लगाने की शैली बहुत पसंद आयी। ध्यानपूर्वक इस आलाप गायन को सुनकर उसकी खूबियाँ विलंबित, मध्य एवं द्रुत का अनुक्रम, जोरदार गमक इत्यादि बातें स्मृति में रख लीं। पश्चात् वे स्वयं इस गायन शैली में रागों के आलाप करने लगे। मैंने उस्ताद जाकिरुद्दीन-अल्लाबन्दे खाँ साहब का गायन सन् १९१२ में सुना था, जब वे बम्बई आये थे। अण्णासाहब से उस समय उनकी मेल-मुलाकात बम्बई में होती रही। इस समय तक ये खाँ साहब अण्णासाहब को एक गायक न समझते हुए निरे पंडित समझते थे। पर जब उन्होंने मनरंग घराने की चीजें, रावजीबुआ, अलीहुसैन खाँ और अन्यान्य उस्तादों से सीखी हुई चीजें उनको गाकर सुनायीं तब वे बहुत प्रसन्न हुए। वे अण्णासाहब को आदरभाव से देखने लगे। जाकिरुद्दीन खाँ के एक सुपुत्र जियाउद्दीन खाँ को मैंने कुछ वर्ष पूर्व देखा था। उनका गाना भी सुना था। जियाउद्दीन खाँ अपने पिता की शैली में ही गाते थे। अल्लाबन्दे खाँ साहब के सुपुत्र स्व० नसीरुद्दीन खाँ अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय गायक थे। इनके तीन पुत्र एवं अल्लाबन्दे खाँ साहब के तीन पुत्र अब "डागर" उपनाम धारण करते हुए गाते हैं।

इस प्रकार ग्रंथों का अध्ययन, क्रियात्मक संगीत की शिक्षा एवं अभ्यास तथा संगीत संशोधनार्थ भारत भर की यात्राएँ समाप्त करके अण्णासाहब ने सन् १९०९ में अपने चिरस्मरणीय संगीत ग्रंथ लिखना आरम्भ किया। सर्वप्रथम एक ग्रंथ "श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्" नाम से संस्कृत भाषा में लिखा। संस्कृत में लिखने का उद्देश्य इतना ही था कि भारत के सब प्रदेशों के संगीत शोधक पंडित उसको पढ़ सकें। इसी के स्पष्टीकरण के रूप में मराठी में "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" नाम से एक ग्रंथ-माला लिखना आरम्भ किया। इस ग्रन्थमाला का प्रथम भाग श्री मल्लक्ष्यसंगीतम् के साथ ही साथ सन् १९१० में प्रकाशित हुआ। श्री मल्लक्ष्यसंगीत अण्णासाहब ने अपने कूट नाम "चतुर" के नाम पर प्रकाशित किया। ग्रंथ के आरम्भ में उन्होंने "चतुराख्येन भरतपूर्वखण्डनिवासिना" इन शब्दों से अपना उपमान "भातखण्डे" का संकेत किया है। "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के लिये अपना निजी नाम "विष्णु शर्मा" का उपयोग किया है।

अब इस स्थान पर अण्णासाहब एवं मेरे निकट संबन्ध की कुछ जानकारी बताना उचित होगा।

अण्णासाहब के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम बम्बई में सन् १९०९ में मेरे घर पर ही हुआ था। उस समय मैं श्री अनन्त मनोहर जोशी उर्फ अन्तूबुआ से गायन अपने घर पर ही सीखता था। सन् १९०७ में ही जब मैं ७ वर्ष का था, मेरी संगीत शिक्षा का आरम्भ हुआ था। मेरे पिताजी को संगीत से प्रगाढ़ प्रेम था। स्वयं थोड़ा सितार बजाते थे। सन् १९०७ में मुझे संगीत सिखाने के लिए एक संगीत शिक्षक को, जिनका नाम श्री होनावर कृष्णभट्ट जी था और जो संगीत सिखाने के काम में उस समय बम्बई में प्रख्यात थे; रख लिया। ये सज्जन उत्तर कन्नड़ देश के सारस्वत ब्राह्मण थे। पटियाला घराने के काले खाँ के शिष्य थे। इनको मेरे पिताजी ने यह आदेश दे रक्खा

था कि वे मुझे पूर्ण स्वर ज्ञान करा दें। सौभाग्य से कृष्णंभट्ट जी इसी स्वरज्ञान-शिक्षा-कार्य में विशेषज्ञ एवं कुशल थे। थोड़े ही महीनों के पश्चात् मुझे इतना स्वरज्ञान इन्होंने करा दिया कि मोटर हार्न, रेलवे के इंजन की कूक, सुरीले पंछियों की पुकार, घर में रहती हुई थाली कटोरियाँ, चाय के बर्तन, पूजा की घंटी इत्यादि के स्वर सुनकर मेरे तानपुर के षड्ज पर उनके नाम बोल देने की धुन-सी लगी। बचपन तो था ही। भाई, बहनें, माताजी, पिताजी कोई भी अपने-अपने कार्य में व्यस्त हों तो भी उनके सन्मुख जाकर कटोरी थाली बजाते हुए ग, प, ध, इस प्रकार स्वरों के नाम बड़े जोर से पुकारता। कभी-कभी तो मेरे स्वरज्ञान का कौतुक भी होता। स्वरों के नाम ठीक बताता था इस बात की जाँच-पड़ताल भी पिताजी ने की थी और मेरे स्वरज्ञान पर मेरी प्रशंसा भी की। पर बार-बार माता-पिता एवं भाई-बहनों के कानों पर यह गपधप की भनक पड़ने पर सब लोग उकता गए और इस बात पर मैंने डाट भी खायी।

लगभग डेढ़ वर्ष तक स्वरज्ञान एवं कुछ रागों की चीजें कृष्णंभट्ट जी से सीखने के पश्चात् पिताजी ने सन् १९०८ में श्री अनन्त मनोहर जोशी जी को बुलवाकर उनसे मेरी संगीत शिक्षा चालू कराई।

इन्हीं दिनों मेरे पिताजी के एक परिचित वकील साहब श्री शंकरराव कार्नाड नाम के संगीत में अभिरुचि रखने वाले कभी-कभी मेरी संगीत शिक्षा के समय आकर सुना करते थे। उन्होंने ही श्री कृष्णंभट्ट जी को मेरी शिक्षा के लिये रखवाया था। जोशी जी के समय भी श्री शंकरराव आया करते थे। स्वरज्ञान पक्का एवं परमात्मा की कृपा से कण्ठस्वर भी अच्छा होने के कारण मेरा गाना उनको अच्छा लगता था। यह शंकरराव, अण्णासाहब के भी परम मित्र थे वरन् अण्णासाहब को गुरु ही मानते थे। दोनों वकील थे। संगीत प्रेमी दोनों थे अतएव इस मित्रता में विशेष आनन्द था। एक दिन शंकरराव अण्णासाहब को अचानक मेरी शिक्षा के समय हमारे घर ले आये। पिताजी प्रतिदिन मेरी शिक्षा के समय उपस्थित रहते थे, उस दिन भी थे। अण्णासाहब ने गाना सुन और मुझसे कुछ फरमाइशें भी कीं। सप्तक के सब बारह स्वर तीव्र-कोमल उनके क्रम से बिना रुके गाने को कहा। मुझे तो विदित नहीं कि मैंने उनके प्रश्नों के उत्तर ठीक दिये अथवा नहीं। अन्तू बुआ को भी चिन्ता हुई कि मैं ये स्वर लगा सकूँगा अथवा नहीं। पर अण्णासाहब ने चलते समय मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए, "बेटा, तुम अच्छे होनहार हो, सीखते जाओ, नाम पाओगे" यह आशीर्वाद दिया। एक लेमन ड्राप्स की शीशी भी मेरे हाथ में देकर चले गये। उस समय बाल्यावस्था में मुझे क्या पता था कि किसी महा-महापुरुष के हाथ का यह प्रसाद था, नहीं तो मैं आज तक उस शीशी को यत्नपूर्वक रखता। मैंने तो दो-तीन दिन में ही मिठाई खा-खिलाकर शीशी अलग कर दी।

सन् १९१० में मेरे पिता जी शारीरिक अस्वस्थता के कारण समय से पूर्व ही सेवानिवृत्त हो गए। जिसके फलस्वरूप घर की आर्थिक स्थिति में गिरावट आ गई। हम लोग बम्बई छोड़ कर पूना चले गये। मेरी संगीत शिक्षा भी स्थगित हो गई। इसी बीच में अण्णासाहब ने मेरे पिताजी के नाम अपनी नई-नई प्रकाशित दो पुस्तकें "श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्,, तथा "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" का प्रथम भाग भेज दीं। मेरे पिताजी

संगीत की सुसमंजस जानकारी के लिए तड़पते थे। वे उस समय की प्रामाणिक एवं सफल संगीतशिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों का अनुभव कर चुके थे। अतएव अण्णा साहब की ये दो पुस्तकें पिताजी ने बार-बार बड़ी सावधानी के साथ पढ़ीं। उनकी संगीत सम्बन्धी बहुत-सी उलझनें सुलझ गईं। उन्होंने मेरी संगीत शिक्षा इन्हीं पुस्तकों में बताए हुए मार्ग पर चलाने का निश्चय किया। उनको दृढ़ विश्वास हुआ कि हिन्दुस्तानी संगीत का प्रचलन अब इन्हीं पुस्तकों के लेखक के बताए हुए मार्ग पर ही चलेगा।

कुछ दिन पूना में रहकर हम लोग पुनश्च बंबई लौटे। मेरा गाना तो स्थगित ही रहा। कुछ दिनों के पश्चात् सन् १९११ में एक दिन मेरे पिताजी ट्राम में बैठकर किसी कार्यवश कहीं जा रहे थे कि वहीं अण्णासाहब के दर्शन उनको हुए। औपचारिक नमस्कार इत्यादि होने के पश्चात् अण्णासाहब ने मेरे संबंध में पूछताछ की। पिताजी ने बताया कि चीजें तो सब भूलता जा रहा है, पर स्वरज्ञान तो अब भी अच्छा है। "मेरे पास ले आइये उसको" अण्णासाहब ने कहा और अपना पता पिताजी को बताया। पिताजी मुझे उनके घर ले गये और मेरी संगीत शिक्षा अण्णासाहब के पास पुनः प्रारम्भ हुई। गायन उत्तेजक मण्डली में ही प्रतिदिन शाम को दो घण्टे बैठकर अण्णासाहब मुझे शिक्षा देते रहे। मेरे पिताजी भी साथ रहा करते थे। इस प्रकार मेरा संगीत का अभ्यास नियमित रीति से अण्णासाहब के पास होता रहा। अण्णासाहब सिखाने में बहुत प्रेम एवं शान्ति रखते। एकाध टुकड़ा राग का अथवा चीज का कोई मेरी समझ में आने में विलंब भी लगता तो बिल्कुल शान्ति के साथ मुझसे उसको बार-बार सुनते हुए दुहराते। संगीत अध्यापकों के लिये यह गुण बहुमूल्य है। छात्र के बेसुरे बेंताले होने पर हम लोग तुरन्त बिगड़ जाते हैं और भला-बुरा भी बोल जाते हैं। क्योंकि अपस्वर की चोट बड़ी बुरी होती है। आग का चटका-सा अथवा गाली-सा लगता है। सुननेवाला संतप्त हो जाता है। संगीत शिक्षकों को तो यह दिन-प्रतिदिन भुगतना पड़ता है। वरन् अपनी संगीत स्फूर्ति भी खो बैठना पड़ता है। पर अण्णासाहब ने एक बार भी कभी मेरे प्रमादों पर असंतोष नहीं दिखाया। पिताजी अवश्य मुझ पर क्रोध करते। एकाध बार इसी बात पर, कि बिना मूल्य मिलती हुई शिक्षा पर विशेष ध्यान देना मेरा कर्तव्य था, सो न करके अण्णासाहब को व्यर्थ कष्ट दिया, मैंने घर पर लौटकर पिताजी के हाथ की मार भी खायी। पर अण्णासाहब सदा सागर की भाँति शान्त चित्त रहकर ही सिखाते। मुझे लाड़-प्यार में बाबू कहते थे। मेरी संगीत मित्र मंडली में मेरा यही नाम प्रचलित है। स्व० वाड़ीलाल जी, स्व० राजाभैया एवं ग्वालियर के संगीतज्ञ मुझे इसी नाम से पहचानते थे।

मेरी संगीत शिक्षा के साथ-साथ मेरा शिक्षण भी चलता रहा। पर प्रतिकूल आर्थिक परिस्थिवश शिक्षण में बाधा होने लगी। शिक्षण स्थगित रखने की आपत्ति भी आ पड़ी। अण्णासाहब ने ही सन् १९१७ में मुझे बड़ौदा सरकार से मासिक चालीस रुपये का विद्यावेतन दिलवाकर इस आपत्ति से बचाया। अब मेरा सामान्य शिक्षण चलने लगा। अण्णासाहब स्वयम् यह नहीं चाहते थे कि मैं निरा गवैया एक 'बुआ' बन के रहूँ। उनकी मेरे लिए यह अभिलाषा थी कि मैं कम से कम बी० ए० तक शिक्षण पूरा करूँ। बड़ौदे

में ही रहकर अध्ययन करना यह आदेश मुझे वहाँ के सरकार एवम् अण्णासाहब से मिला। उस समय स्व० उस्ताद फैयाज हुसेन खां साहब बड़ौदे में ही दरबार-गायक थे। अण्णासाहब ने मुझको उन्हीं के पास अपनी संगीत शिक्षा चालू रखने की आज्ञा दी। मैं उस्ताद के पास सीखता रहा। बड़ौदे में मैं पाँच वर्ष, सन् १९१७ से १९२२ तक रहा। अण्णासाहब हर तीन महीने बाद बड़ौदा सरकार के संगीत विद्यालय के निरीक्षण के लिये बड़ौदे आया करते थे। उस समय मुझको बुलाकर मेरी संगीत प्रगति की पूछताछ, जाँच-पड़ताल अवश्य करते एवं मुझे उपयुक्त सूचनाएँ भी देते रहते। कुछ राग एवम् चीजें भी सिखा जाते। इस प्रकार उनके पास भी मेरी संगीत शिक्षा चालू रही। सन् १९२२ में जब हम लोग बड़ौदा छोड़कर बंबई चले आये, तब फिर मैं अण्णासाहब के पास जाता रहा। सन् १९२६ में बंबई विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और आगे एम० ए० अथवा एल० एल० बी० पढ़ने का विचार कर ही रहा था कि लखनऊ में "मैरिस म्यूज़िक कालेज" खुला और तुरन्त अण्णासाहब ने मुझको वहाँ बुलवा लिया। अस्तु यह वैयक्तिक वृत्तान्त यहीं समाप्त कर मूल विषय की ओर लौटता हूँ।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम भाग छपकर प्रकाशित होने के पश्चात् एक स्वरचित स्वर-मालिका गायन उत्तेजक मंडली के द्वारा एवम् एक लक्षणगीत-संग्रह माला-कल्याण (यमन) थाट, बिलावल थाट तथा खमाज थाट के रागों का छपवा कर प्रकाशित किया।

अण्णासाहब वकालत की परीक्षा पास करके वकालत करने लगे तब वे एक बड़ी जायदाद के ट्रस्टी का भी कार्य करते थे। बंबई के सुप्रसिद्ध वकील शान्ताराम नारायण पाटकर बड़े धनी थे। उनके कई मकान बंबई, मलाड इत्यादि में थे। उनके कोई पुत्र न था, केवल दो कन्याएँ थीं। जिनके विवाह हो चुके थे। पर उन पुत्रियों में से एक का अपने पिता के जीवनकाल में ही देहान्त हो चुका था। बची हुई पुत्री श्रीमती धाकली बाई सीताराम सुकथनकर नामक एक इंजीनियर साहब को ब्याही थी। धाकली बाई के दो पुत्र एवम् तीन कन्याएँ थीं। पर पिता के जीवनकाल में ही धाकली बाई के पति का देहान्त हो गया था। पाटकर साहब ने अण्णासाहब को अपनी जायदाद का ट्रस्टी बनाया और अपने ही यहाँ उनके रहने का प्रबन्ध किया। तब से अण्णासाहब आमरण वहीं रहे। इनकी रहने की कोठी वालुकेश्वर ही के रास्ते पर पास ही थी। श्रीमती धाकली बाई को संगीत का शौक था और स्वयम् तथा उनकी संतान अण्णासाहब के संगीत शोधन कार्य में बहुत रस लेते। अण्णासाहब की संगीत अनुसंधान यात्राओं में सुकथनकर कुटुंब उनके साथ अवश्य रहता। अण्णासाहब की संगीत विषयक यात्रा श्रीमती धाकली बाई की तीर्थ यात्रा, और बच्चों का देशपर्यटन आदि साधने के हेतु सभी ने मिलकर एक साथ कीं। रुपये-पैसों की तो कमी थी नहीं। अतएव ये यात्राएँ पर्याप्त सफल हुईं। सुकथनकर कुटुंब अण्णासाहब को बहुत मानता था। विशेषतया धाकली बाई के द्वितीय पुत्र श्री भालचंद्र सीताराम सुकथनकर ने अण्णासाहब की सेवा उनके अन्तकाल तक की और उनके देहान्त के पश्चात् भी अपने धंधे-रोजगार (वे सालिसिटर थे) के कार्य को सम्हालते हुए अण्णासाहब का संगीत कार्य आगे बढ़ाते रहे। दुर्दैववश अण्णासाहब के

पश्चात् चार ही वर्ष बादउनका भी देहान्त हो गया। अण्णासाहब की सभी संगीत यात्राओं में एवम् बड़ौदा, दिल्ली, बनारस और लखनऊ में हुई अखिल भारतीय संगीत परिषद् में, जो अण्णासाहब ही की देखभाल में हुई थी, भालचन्द्र राव उनके साथ उपस्थित थे।

अण्णासाहब की ये सब पुस्तकें छप ही रही थीं कि अन्य कुछ संगीत-विद्वानों ने भारतीय संगीत स्वर-सप्तक पर शोध कार्य आरम्भ किया। इन विद्वानों का उद्देश्य यह था कि पाश्चात्य संगीत पंडितों के समझाये हुए ध्वनिशास्त्र के सिद्धांत हमारे प्राचीन ग्रंथों की उक्तियों से भी सिद्ध हो सकते हैं तथा इन्हीं सिद्धांतों द्वारा प्राचीन तथा अर्वाचीन स्वर सप्तक सिद्ध किये जा सकते हैं। इन सज्जनों ने अपने विचार समाचार पत्रों में प्रकाशित किए। इन विचारों के कारण, जिन्हें ग्रंथों का कोई आधार तो था नहीं, लोगों को दिशाभ्रम न हो; इस हेतु अण्णासाहब ने समाचारपत्रों में प्रकाशित विचारों पर समालोचना करना आवश्यक समझा। और हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के दूसरे भाग में इन्हीं विद्वानों के विचारों पर लगभग प्रथम १३५ पृष्ठों में चर्चा भी की। उसके पश्चात् भैरव-थाट के सब रागों को एक-एक लेकर ग्रन्थोक्तियों सहित इतिहास समझाते हुए उनका वर्णन उनके प्रचलित स्वरूपों के अनुसार किया। इसी ग्रन्थमालिका के प्रथम भाग में संगीत के कुछ मौलिक सिद्धांत समझाकर उसके पश्चात् कल्याण (यमन), बिलावल तथा खमाज थाटों के रागों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। दूसरे भाग के पश्चात् ही तीसरा भाग भी छप कर प्रकाशित हुआ। इसमें पूर्वी तथा मारवा थाट के रागों की चर्चा है। स्थान-स्थान पर संदर्भ को नष्ट न करते हुए जहाँ मौका मिला, अपनी संगीत संशोधन यात्राओं में आये हुए विनोदात्मक-प्रसंगों का वर्णन करते हुए अण्णासाहब ने इन राग-चर्चाओं को पर्याप्त मनोरंजक बनाया है।

इसके पश्चात् की महत्वपूर्ण घटना थी बड़ौदा में सन् १९१६ में तत्कालीन बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन से बुलाई गई पहली अखिल भारतीय संगीत परिषद्। यह परिषद् दो महान् व्यक्तियों की चर्चा तथा सहकार्य का फल थी। एक अण्णासाहब एवं दूसरे तत्कालीन बड़ौदा नरेश हिज़ हाईनेस सर सयाजीराव महाराज़। विद्या एवं कला के एक महान् पुरस्कर्ता के रूप में इन महाराज का नाम सर्वश्रुत है ही। जहाँ तक मेरा विचार है सब से पुराना संगीत विद्यालय बड़ौदा में ही था। मौलाबक्ष घिस्से खाँ नाम के एक प्रख्यात गायक एवं संगीत अध्यापक इस विद्यालय को चलाते थे। इन खाँ साहब की स्वरलिपिबद्ध गीतों की पाठयपुस्तकें अब भी पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। प्रो० मौलाबक्ष खाँ स्वयं एक महान् परिश्रमी तथा कर्मठ पुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन काल में विद्यालय अच्छा चलाया। बड़ौदा सरकार से द्रव्य सहायता पाते-पाते अन्त में वह पूर्णतया बड़ौदा का सरकारी संगीतविद्यालय बन गया पर मौलाबक्ष खाँ के पश्चात् विद्यालय अवनत होने लगा और सन् १९१४-१५ में ऐसी गिरी हुई अवस्था उसकी थी कि श्रीमन्त महाराज को उस विद्यालय के पुनरुद्धारार्थ उपाय खोजने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अण्णासाहब का नाम उस समय सर्वत्र प्रख्यात था। उनकी तीन-चार पुस्तकें, श्री-मल्लक्ष्यसंगीत-हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के प्रथम तीन भाग, स्वरमालिका, लक्षणगीत-संग्रह इत्यादि प्रकाशित हो चकी थीं। उनको गायकवर्ग में, संगीत प्रेमी लोगों में व संगीत क्षेत्र

में एक अधिकारी पुरुष का स्थान प्राप्त था उस समय बड़ौदा में एक भारतीय ईसाइ सज्जन श्री सैम्युएल जोशी नाम के बड़ौदा कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। श्रीमती धाकलीबाई के ज्येष्ठ पुत्र डा० विष्णु सीताराम सुकथनकर उर्फ गुलाबराव का और सैम्युएल जोशी का अच्छा स्नेह संबंध था। गुलाबराव जर्मनी में कई वर्ष रहकर संस्कृत में वहाँ से डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर के इसी समय भारत लौटकर आये थे और पूने की "डाक्टर भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट" के प्रधान अधिकारी के पद पर कार्य करते थे। अण्णासाहब का संगीत कार्य तो इन को विदित ही था। इन्हीं के द्वारा सैम्युएल जोशी को अण्णासाहब एवं उनके कार्य का परिचय मिला। सैम्युएल जोशी बड़े प्रभावशाली पुरुष थे। श्रीमान् सरकार सयाजीराव महाराज इनको बहुत मानते थे। बड़ौदा के संगीत विद्यालय के विषय में जब महाराज को चिंता उत्पन्न हुई तो वे ऐसे किसी संगीत विद्वान् की तलाश में लगे कि जो विद्यालय के सुधार के संबंध में उपयुक्त सूचनायें दे सके। अण्णासाहब का नाम महाराज ने सुना ही था। जोशी जी के साथ वार्तालाप करते समय अण्णासाहब का भी नाम आया। जोशीजी ने अण्णासाहब के कार्य, जो वे केवल संगीतप्रेम के ही कारण निःस्वार्थ भाव से कर रहे थे, उसमें उनके द्वारा की हुई प्रगति, उनके प्रकाशन इत्यादि के आद्यन्त वृत्तान्त महाराज को बताए। महाराज ने अण्णासाहब को बड़ौदा आकर संगीत विद्यालय की जाँच-पड़ताल करके उसको रास्ते पर लाने के लिये सुझाव देने के हेतु आग्रह करते हुए एक पत्र लिखवाया। अण्णासाहब तो संगीत संबंधी किसी भी कार्य के लिये सदा तत्पर ही रहते थे, बड़ौदा चले गये।

महाराज के साथ संगीत पर बहुत बातचीत हुई। बड़ौदा के संगीत विद्यालय के पुनर्गठन के संबन्ध में चर्चा करते हुए महाराज ने सर्वप्रथम महत्वपूर्ण "स्वरलिपि" का प्रश्न उठाया। चर्चा इस प्रकार हुई :

महाराज—क्यों पंडित जी, सामुदायिक संगीत शिक्षा के लिये शास्त्रोक्त रीति से लिखी हुई पाठ्यपुस्तकों की एवं उन पुस्तकों के लिये स्वरलिपि प्रणाली की, जो सीधी, सरल एवं स्पष्ट हो, अत्यन्त आवश्यकता है, यह बात आपको जँचती होगी ?

अण्णासाहब—अवश्य, सरकार, यह बात मैं मानता हूँ। पर प्रश्न यह है कि पाठ्य-पुस्तकों में स्वरलिपि द्वारा लिखा क्या जायगा ?

महाराज—(विस्मित होकर) क्यों ? लिखा क्यों नहीं जायगा ? ये ही आपकी राग-रागिणियाँ, उनके बरतने के नियम, स्वरविस्तार, उनकी चीजें ? क्या ये नहीं लिखी जा सकतीं ?

अण्णासाहब—सरकार, लिखी तो जा सकती हैं, पर जो कुछ लिखा जायगा उसको गायक-वादक एवं संगीत विद्वानों से सर्वमान्यता प्राप्त करायी जाय तब वे चलायी जा सकती हैं।

महाराज—(आश्चर्यचकित होकर) अरे ? क्या हमारे संगीत के, राग-रागिणियों के, रागदारी गीत प्रबन्धों के सर्वमान्य एवं निश्चित रूप नहीं है ?

अण्णासाहब—महाराज, कुछ मोटी-मोटी बातों में तो कोई मतभेद नहीं है। पर बहुत-सी ऐसी बातें हमारे संगीत में हैं जिनके संबंध में अनेक गायकों में, घरानों में मतभेद है। इन मतभेदों में कोई तात्विक तथ्य नहीं है। गायक गुणीजन यदि एक साथ मिलकर उन पर चर्चा कर के किसी निर्णय पर आवें तो ये सब मतभेद मिटाए जा सकते हैं।

महाराज—अच्छा, मैं समझ गया। फिर आपका क्या विचार है? गायक-वादक, गुणीजन तथा संगीत विद्वानों को बुलाया जाय?

अण्णासाहब—(नम्रतापूर्वक, धीरे से) यदि यह बात सरकार को स्वीकार हो तो इससे श्रेयस्कर और क्या हो सकता है।

बस, इतना कहना था कि महाराज ने अण्णासाहब को एक अखिल भारतीय संगीत परिषद् की योजना लिखकर सरकार को भेजने के लिये आग्रह किया। फलतः सन् १९१६ के मार्च में पहिली अखिल भारतीय संगीत परिषद् बड़ौदा में वहाँ की सरकार के संयोजन में हुई। इस परिषद् में समस्त भारत के गायक-वादक, गुणीजन एवं संगीत विद्वान्, हिंदुस्तानी एवम् दाक्षिणात्य—दोनों प्रणालियों के पधारे थे और वहाँ बहुत विषयों पर चर्चा हुई, निबंध पढ़े गये, विचारं विनिमय हुआ। यह सचमुच एक परिषद् थी। इस प्रकार संगीत परिषदों की प्रथा प्रारम्भ हो गई जो आजतक प्रचलित है। यह बात अवश्य है कि अण्णासाहब के पश्चात् जो संगीत परिषदें समय-समय पर विभिन्न-स्थानों पर होती रहीं वे सब निरी लोकरंजनार्थ, संगीत जलसों के रूप में हुईं। शास्त्रचर्चा का कुछ भी अंश उनमें न रहा। नृत्य का भी खेल इन परिषदों में अत्यधिक परिमाण में होता रहा। वरन् जिस संगीत परिषद् में सुन्दर बालिकाएँ, मनोहर वेशभूषा में रंग-मंच पर आकर न नाचें, उस परिषद् को ईश्वर ही बचावे, ऐसी परिस्थिति आ गई थी। परन्तु इन परिषदों द्वारा उच्च, मध्यम तथा निम्न श्रेणी के जनसमाज को संगीत एवं नृत्य की सुन्दरता का पर्याप्त परिचय हुआ और अब लगभग हरएक कुटुम्ब के बालक-बालिकाएँ इन कलाओं को सीखने का भरसक प्रयत्न करने लगे हैं।

अण्णासाहब के बताये हुए मार्ग पर पुनः यदि संगीत परिषदें होना आरंभ हो जाएँ तो संगीत विषयक बहुत-सी बातें निश्चित एवं सर्वमान्य होकर सब झगड़े मिट जायेंगे। परिषदों की यह कल्पना हमारे संगीत में अण्णासाहब की ही देन है। उनके समक्ष उनके नेतृत्व में बड़ौदा की परिषद् के पश्चात् और परिषदें एक सन् १९१२ में दिल्ली में, एक सन् १९२० में बनारस में तथा दो लखनऊ में सन् १९२४ तथा सन् १९२५ में हुई थीं। इन सब में शास्त्रचर्चा अनिवार्य रूप से हुई थी।

लगभग सन् १९१० में प्राचीन संगीत ग्रन्थों के शुद्ध स्वर सप्तक तथा उसी के आधार पर आजकल के प्रचलित रागों के स्वरस्थानों पर तत्कालीन कुछ संगीत विद्वानों के विचार तथा सिद्धांत समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए थे। और उन पर अण्णासाहब ने विस्तृत समालोचना हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के द्वितीय भाग में की थी, इसका उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। इन विद्वज्जनों को अण्णासाहब ने निमंत्रण देकर बड़ौदा की संगीत परिषद् में अपने विचार रखने की प्रार्थना की। अतएव यह चर्चा पुनः बड़ौदा की

परिषद् में उठायी गई। मुख्य वाद ग्रंथों के शुद्ध ऋषभ तथा शुद्ध धैवत पर था। प्रति सेकण्ड २४० स्फुरणों के वेग का षड्ज गृहीत कर के उसके अनुसार ग्रंथों का शुद्ध ऋषभ २६६$\frac{2}{3}$ स्फुरण (प्रति सेकण्ड) का होता है और यही ऋषभ प्रचलित काफी-मेल-ग्रंथों के शुद्ध-स्वर-सप्तक का होना चाहिये। इसी मेल का धैवत, उसी षड्ज के अनुसार प्रति सेकण्ड ४०० स्फुरणों का होना चाहिए। यह सिद्धांत उन विद्वानों ने परिषद् के आगे रखा। बहुत लोगों ने इस सिद्धांत का विरोध किया। अन्त में प्रचलित काफी में ऋषभ के स्वर-स्थान को गवाकर सुना जाय इस निर्णय पर पहुँचे और किसी गायक से, जिसे अन्य सभी गायक लोग मानते हों, सुनाने की प्रार्थना की जाय, यह प्रस्ताव पास हुआ। सब गायकों ने उदयपुर के जाकिरुद्दीन खाँ साहब को चुन लिया। संगीत विद्वानों ने एक श्रुतिहार्मोनियम भी साथ लाया हुआ था। जाकिरुद्दीन खाँ साहब ने प्रथम काफी के आरोहावरोह एक-एक स्वर पर ठहरते हुए गाए। तत्पश्चात् ऋषभ पर आकर उसको देर तक गाते रहे। हार्मोनियम पर २६६$\frac{2}{3}$ का ऋषभ बजाकर देखा गया तो वह खाँ साहब के गाए हुए ऋषभ से कहीं नीचे था। खाँ साहब का ऋषभ हार्मोनियम के २७० स्फुरण वेग (प्रति सेकण्ड) के ऋषभ के साथ ठीक मिला। इस प्रकार प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा प्रचलित काफी का ऋषभ $\frac{\text{री}}{\text{सा}} = \frac{२७०}{२४०} = \frac{९}{८}$ सिद्ध हुआ। इसी प्रकार धैवत भी गाया गया और वह भी ४०० के धैवत से जो कि विद्वानों का इष्ट था बहुत ऊँचा सुनाई दिया। इस चर्चा का वृत्तांत बड़ौदा की अखिल भारतीय संगीत परिषद् की रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ ही है। दक्षिण के अब्राहम पंडित ने भी विद्वानों के मत का खंडन किया और अपनी दो पुत्रियों से २२-२२ श्रुतियाँ जो उन्होंने अपने मत से निश्चित कर रखी थीं, गवाकर सुनवायीं। श्रुति-हार्मोनियम की श्रुतियों से ये श्रुतियाँ मिलीं नहीं। भारतीय श्रुति-स्वर चर्चा पर इनकी एक बड़ी पुस्तक अंग्रेजी में लिखी हुई प्रकाशित है।

यह श्रुति-स्वर वाद तथा ग्रंथों के शुद्ध स्वरसप्तक की चर्चा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। आज भी हमारे संगीत के विद्वान् शोधन में लगे हुए हैं। स्वयं अण्णासाहब के विचार इस विषय में क्या थे, अब इस स्थान पर बताना उचित होगा।

प्राचीन ग्रंथों में से संगीतपारिजात ही एक ऐसा ग्रंथ था कि जिसमें ग्रंथकार ने अति स्पष्ट रूप से शुद्धविकृत स्वर वीणा के तार पर, तार की लम्बाई के विभागों द्वारा बताये थे। दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली के कुछ ग्रन्थ विशेषतया रागविबोध सदृश्य उपलब्ध थे। उनकी स्वरों की परिभाषा भी उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों की परिभाषा से भिन्न थी। अतएव हमारे यहाँ के संगीत-विद्वान् वहाँ के ग्रन्थों पर दृष्टिपात भी नहीं करते थे। वहाँ की परिभाषा में भैरव, भैरवी, जैसे रागों में शुद्ध ऋषभ, धैवत बताये हुए हैं। कोमल तीव्रादि संज्ञाओं का नाम निशान भी नहीं है। फलतः हमारे विद्वानों ने उनको अलग ही रखा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। पर अण्णासाहब ही एक थे जिन्होंने दक्षिण की यात्रा कर के दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली का शुद्धमेल तथा उस प्रणाली की परिभाषा समझ कर उसके शुद्ध-विकृत स्वर हमारी उत्तर भारतीय प्रणाली में कौन-से स्वर होंगे, इस बात का स्पष्टीकरण किया। हमारी उत्तर-भारतीय संगीत प्रणाली का मुख्य वाद्य बीन एवं दाक्षिणात्य

संगीत प्रणाली की सरस्वती वीणा पर पर्दों की अवस्था बिलकुल एक-सी थी। अतएव हमारे यहाँ शुद्ध-विकृत मिलकर बारह स्वर प्रचार में थे। वे ही बारह स्वर दाक्षिणात्य प्रणाली में भिन्न परिभाषा में होने चाहिये यह बात स्पष्ट दिखाई देती थी। और इसी बात पर निश्चित रूप से जानकारी प्राप्त करने के लिये अण्णासाहब ने दक्षिण की यात्रा की और उन्होंने ही सर्वप्रथम दाक्षिणात्य एवं उत्तर-भारतीय-संगीत का आपसी साम्य तथा उनके भेद समझाए। साथ-साथ रामामात्य का स्वरमेल-कला निधि, व्यंकटमखी की चतुर्दण्डि-प्रकाशिका, रागलक्षण आदि प्रचलित दाक्षिणात्य संगीत प्रणाली के आधारग्रंथ संपादन कर के प्रकाशित किए। मध्यकालीन ग्रन्थों के अनुसार उत्तर भारतीय संगीत प्रणाली का शुद्धस्वर मेल लगभग काफी मेल एवं दाक्षिणात्य प्रणाली का मुखारी, जो बाद में कनकांगी कहलाया, शुद्ध स्वरसप्तक सिद्ध हुए।

पर उत्तरभारतीय संगीत के प्रत्यक्ष प्रचार में बिलावल सप्तक के ही स्वर, संगीत की प्राथमिक शिक्षा में सिखाए जाते हैं और यह प्रचार कम से कम दो ढाई सौ वर्षों से चलता आ रहा है। बिलावल सप्तक में लगने वाले स्वरों को ऊँचा नीचा कर के तीव्र, कोमल ये विशेषण लगाए जाते हैं। अतएव बिलावल के ही स्वरों को शुद्ध स्वर कहा जाता है। वास्तव में तीव्र कोमल आदि विशेषण केवल स्वरों की ऊँची-नीची अवस्था के सूचक हैं। षड्ज तथा पंचम तो अचल स्वर ही हैं। ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत तथा निषाद प्रत्येक की दो-दो अवस्थाएँ मुख्यतः मानी जाती हैं। अर्थात् एक नीची तथा दूसरी ऊँची। बिलावल के सप्तक में चल स्वरों में से केवल एक मध्यम के अतिरिक्त शेष सब स्वर अपनी-अपनी ऊँची अवस्था में होते हैं। अतएव ये तीव्र री, तीव्र ग, तीव्र ध एवं तीव्र नि कहलाते हैं। इसी सप्तक में मध्यम अपनी नीची अवस्था में होता है। उसको कोमल मध्यम भी कहते हैं। प्राचीन ग्रंथ भरत नाट्यशास्त्र, रत्नाकर आदि के अनुसार स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी अपनी-अपनी अन्तिम (उच्चतम) श्रुति पर बतायी गई है। पर ये अवस्थाएँ तो श्रुति व्यवस्था की दृष्टि से हुईं। स्वरों की विकृतियाँ रत्नाकर में दो प्रकारों से समझायी गयी हैं। एक जबकि स्वर अपनी नियत श्रुति छोड़कर नीचे अपनी पिछली श्रुति पर हटता है अथवा उनपर अगले स्वर की श्रुतियाँ ग्रहण करता हुआ ऊपर बढ़ता है। दूसरे प्रकार से स्वर अपनी नियत श्रुति पर स्थित रहते हुए भी केवल पड़ोस के स्वर के चढ़ने उतरने के परिणाम स्वरूप ध्वन्यन्तर बढ़ने-घटने के कारण विकृत कहलाता है। भरतमुनि ने तो दो विकृत बताये हैं। अर्थात् अन्तर गांधार तथा काकली निषाद जो क्रमशः मध्यम तथा षड्ज की दो-दो श्रुतियाँ ग्रहण कर के विकृत हो जाते हैं। मध्यमग्राम में पंचम, षड्ज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचे हटता है। उसको एक और विकृत समझा जा सकता था। पर स्वयं भरत कहीं उसको विकृत स्वर नहीं कहते। संगीत रत्नाकर में अवश्य चढ़ते-उतरते हुए तथा दो स्वरों के बीच का ध्वन्यन्तर बढ़ने पर स्वरों का विकृत पाना बताया गया है। पर यह सब बातें श्रुति की परिभाषा में समझाई हुई हैं। संगीतपारिजात में अवश्य वीणा के तार पर उसके विभागों द्वारा शुद्ध विकृत स्वर बताए हैं जिससे उसका शुद्ध स्वरमेल प्रचलित काफी का सप्तक सिद्ध होता है। अहोबल ने वीणा के तार पर अपने शुद्ध-विकृत स्वरों की स्थापना समझाते समय

यह एक आवश्यक प्रतिबन्ध लगाया है कि "षड्ज-पंचम-भावेन षड्ज ज्ञेया: स्वरा बुधैः" अर्थात् "मेरे षड्ज ग्राम में (शुद्ध स्वर सप्तक में) षड्ज-पंचम भाव में (पूर्वांग तथा उत्तरांग के स्वर आपस में षड्ज-पंचम भाव में) समझना चाहिए। अतएव सा से प जिस अनुपात में ऊंचा होगा उसी अनुपात में री से ध, ग से नि तथा म से सां ऊंचा होगा।

$\frac{\text{प}}{\text{सा}} = \frac{३}{२}$ अतएव $\frac{\text{ध}}{\text{री}}$, $\frac{\text{नि}}{\text{ग}}$ तथा $\frac{\text{सा}}{\text{म}}$ ये सब $\frac{३}{२}$ के बराबर होंगे।"

इस प्रतिबन्ध को लक्ष्य में रखकर यह स्वर स्थापना करनी है। इस विषय पर लिखे हुए अहोबल के श्लोकों में एकाध स्थान पर संदिग्धता है। ऋषभ का स्थान समझाते हुए वे कहते हैं "सपयोः पूर्वं भागे च स्थापनीयोऽथ रि-स्वरः"। सा तथा प के बीच के स्थलान्तर के पूर्व तथा उत्तर के दो विभाग हुए अब पूर्व भाग में कहां, यह समस्या आ जाती है? पर इसका उत्तर "षड्ज-पंचम-भावेन" इत्यादि उक्ति से वे पहले ही दे चुके हैं। इनमें से पूर्व भाग के अन्दर षड्ज-पंचम-भाव को न तोड़ते हुए ऋषभ का स्थान होगा। षड्ज से पंचम, पंचम से षड्ज-पंचम-भाव से मिलता हुआ तार सप्तक के ऋषभ को ही मध्य स्थान अर्थात् १ में नीचे लाकर जो ऋषभ मिलेगा वही अहोबल का शुद्ध ऋषभ होगा। इसी से षड्ज-पंचम-भाव से मिलता हुआ धैवत अहोबल का शुद्ध धैवत होगा। शेष सब शुद्ध स्वरों के संबंध में कोई संदिग्धता नहीं है। ये सब स्वर प्रचलित काफी मेल के, २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५ तथा ४३२ प्रति सेकण्ड स्फुरणों के हैं। ये ही स्वर वीणा के तार पर घुरच तथा आड़ के बीच में इस प्रकार होंगे :—

सा = १ (घुरच से आड़ तक पूरा तार), री = $\frac{९}{१०}$, ग = $\frac{४}{५}$, म = $\frac{३}{४}$, प = $\frac{२}{३}$, ध = $\frac{१६}{२५}$ तथा नि = $\frac{५}{९}$

ऊपर बताया ही गया है कि संगीत-पारिजात तथा उसके समकालीन ग्रन्थों का अर्थात् लोचन की रागतरंगिणी, हृदयनारायण देव का हृदय कौतुक तथा हृदय-प्रकाश, श्रीनिवास का रागतत्वविबोध इत्यादि उत्तर भारतीय संगीत प्रणाली, शुद्धस्वरमेल, आजकल के काफी का था।

इसी सप्तक के निषाद को षड्ज मानकर यही सप्तक नि से नि तक अर्थात् नि सा री ग म प ध नि इन्हीं को क्रमशः सा री ग म प ध नि सां नाम देकर गाने पर बिलावल (आजकल का शुद्धस्वर सप्तक) मिलता है। इसी निषाद को षड्ज की प्रथम श्रुति मानकर एवं उसी पर षड्ज स्थापित कर के 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि स्वरान्तरों के नियम के अनुसार अरुणासहब ने निम्नलिखित व्यवस्था श्रुतियों की परिभाषा में बतायी। यथा :—

१	२	३	४,	५	६	७,	८	९,	१०	११	१२	१३,	१४	१५	१६	१७,	१८
सा				री			ग		म				प				ध

१९	२०,	२१	२२,
		नि	

प्रत्येक शास्त्रकार अपने-अपने समय के ही संगीत का वर्णन करता है। आधिभौतिक तत्वों की भाँति त्रिकालबाधित नियम संगीत जैसी एक मानव निर्मित कला

में नहीं होते हैं और न हो सकते हैं। संगीत परिवर्तनशील है। देशकालानुसार उसकी रूढ़ियाँ बदलती रहती हैं। भरत मुनि के समय का संगीत मतंग के समय परिवर्तित होकर उसमें राग-गायन का उदय हुआ। मतंग के समय के संगीत में भी आगे चलकर परिवर्तन हुआ। शार्ङ्गदेव ने अपने समय का संगीत समझाते हुए "मार्ग" संगीत के नाम से पूर्व प्रसिद्ध रागों का जो उसके समय प्रचार से गिर चुके थे, उल्लेख किया ही है। भरत के केवल दो विकृत स्वर अंतर गांधार तथा काकली निषाद थे। शार्ङ्गदेव के समय बारह विकृत स्वर प्रचार में आ गये थे। भरत का षड्ज अपने स्थान से हटता नहीं था। शार्ङ्गदेव के षड्ज तथा पंचम दोनों विकृत हो सकते थे; अपने-अपने स्थान से नीचे हट सकते थे। शार्ङ्गदेव के पश्चात् और भी परिवर्तन हुआ। ग्राम मूर्च्छना जाति की प्रणाली मिट गयी। षड्ज तथा पंचम पुनश्च अचल हो गये। नयी रूढ़ि के अनुसार नये शास्त्र नियम बने। उन नियमों को समझाने वाले ग्रन्थ भी लिखे गये। आज के संगीत का शास्त्र अण्णासाहब ने लिखा। आज का संगीत भरत शार्ङ्गदेव का नहीं है, न अहोबल का ही है। उनके शास्त्र में भरत के नाट्यशास्त्र की प्रणाली से भिन्नता हो और यदि वह दोष ही माना जाए तो वर्तमान रूढ़िका दोष है, शास्त्रकार का नहीं।

अण्णा साहब का मुख्य उद्देश्य उनके समय का प्रचलित संगीत (लक्ष्य संगीत) जनता को स्पष्ट रूप से सरल एवं स्पष्ट रीति से समझाना था। भरत मुनि का षड्ज ग्राम किन-किन स्वरों का था, इस चर्चा में पड़कर मुख्य उद्देश्य को अलग रखना उन्होंने योग्य नहीं समझा और उस चर्चा से तादृश विशेष लाभ न होगा, यह उनकी मान्यता थी। प्राचीन ग्रन्थों की उक्तियों का स्पष्टीकरण अधिकतर उनके समय के संगीत के प्रत्यक्ष प्रचार पर, क्रिया पर निर्भर है। वहाँ निरी तर्कबुद्धि सफल न होगी यह उनका मत था। हरिदास एवं तानसेन के—जो अपेक्षाकृत बहुत अर्वाचीन थे—समय के संगीत का भी पता लगाना कठिन है तब भरत और शार्ङ्गदेव के समय के संगीत का साक्षात्कार करना असंभव-सा है। स्वयंम् 'श्रुति' की ही परिभाषा—जिसपर षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की सिद्धि निर्भर है—इन दो ग्रामों के पंचमों पर निर्भर है। ये दोनों ग्राम उस समय प्रचलित थे। उनके पंचम लोगों के कानों में स्पष्ट थे। अतएव इन पंचमों का ध्वन्यन्तर जिसको भरत मुनि ने श्रुति का परिमाण बताया है उस समय के गायक-वादक निकाल सकते थे। संगीतरत्नाकर की टीका में सिंहभूपाल इस विषय पर विचार करते हुए एक स्थान पर मतंग की एक उक्ति उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार है :

"ननु श्रुतेः किम् प्रमाणम् (मानम्) ? उच्यते। पंचमस्तावद् ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षणापकर्षणाभ्याम् मार्दवादायतत्वाद्वा यदन्तरम् तत्प्रमाणश्रुतिरिति"। मतंग भरत के ही पश्चात् हुए। इनका ग्रन्थ बृहद्देशी नाम का है जिसमें उन्होंने रागों की विस्तृत चर्चा की है जो भरत ने नहीं की थी। श्रुतियों पर चर्चा करते हुए मतंग प्रथम प्रश्न यह उठाते हैं—"भला, श्रुति का परिमाण क्या है ?" और उसके उत्तर में कहते हैं—षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम के पंचम तो सब लोगों के परिचित ही हैं। उन्हीं की उच्च-नीचता में जो ध्वन्यन्तर प्राप्त होता है वही श्रुति का परिमाण है। उस समय के वीणाविद्

अपनी वीणा षड्जग्राम में तथा मध्यम ग्राम में केवल अपने कान से सुनकर मिला सकते होंगे। जैसे आज भी किसी भी थाट में हमारे सितारिये अपना सितार मिला लेते हैं। अतएव उस समय के लोगों को भरत की श्रुति परिमाण निकालने में कठिनाई न होती होगी। पर आज वह षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम दोनों प्रचार में नहीं हैं और इसी कारण श्रुति परिमाण भी निकालना असंभव हो गया है।

आजकल हमारे कुछ संगीत-विद्वान् भरत के षड्जग्राम का शोध स्वर-संवाद सिद्धान्तों द्वारा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर भरत ने तो अपने स्वर संवाद "श्रुति" की ही परिभाषा में समझाए हैं। हम लोग अपनी श्रवण-कुशाग्रता द्वारा स्वर-संवाद परख लेंगे और ये ही संवाद भरत को अभिप्रेत होंगे, ऐसा हम प्रतिपादन करेंगे। क्योंकि मानव के कान वैज्ञानिक यंत्रों की भाँति अचूक और सक्षम हैं, उसी प्रकार वे भरतमुनि की भाँति उतने ही श्रवण-कुशाग्र हैं, ऐसा हम मानते हैं। अतः इन सबके फलस्वरूप हम लोगों के अपने इच्छित स्थानों पर भरतोक्त स्वर मिल जायेंगे। और फिर क्या है? भरतमुनि का षड्जग्राम हम लोग हथिया लेंगे। सौभाग्य से पाश्चात्य पंडितों ने ध्वनिशास्त्र के मूल सिद्धान्त गणित द्वारा समझा रखे हैं। ध्वन्यन्तरों के परिमाण निर्भ्रान्त बता दिये हैं जिससे हमारे कानों की श्रवण-कुशाग्रता को पर्याप्त सहारा मिलता है; अन्यथा केवल मानव श्रवणेन्द्रिय द्वारा निकाले हुए षड्ज-पंचम संवाद, षड्ज-मध्यम संवाद तथा षड्जान्तर संवाद से बड़ी उलझन में पड़ते। $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{5}{4}$ एवं $\frac{6}{5}$ इन्हीं चार संवादों पर हमारा आज का श्रुति-स्वर-ग्राम-मूर्च्छना-जाति-राग वाद खिल रहा है। पर ये ही संवाद भरतमुनि के भी उद्दिष्ट थे यह बात समझने के लिये घोर तपस्या, प्राचीन विभूतियों पर अटल श्रद्धा, उनका हृदगत जानने की पात्रता और परम्परागत-आनुवंशिक संस्कार चाहिये। अएणासाहब विचारे संभवतः इन सब सौभाग्य-लक्षणों से वंचित रहे। भरत ने जब सा से सां का, री से रीं का, ग से गं का परिमाण द्विगुण बताया है और यह बताने के लिये तार के वायुस्तम्भ के, धात के टुकड़े का नाप-तौल किया ही होगा तब क्या षड्ज ग्राम में सा से प का $\frac{3}{2}$ तथा मध्यमग्राम में री से प का $\frac{4}{3}$ ये परिमाण वे नहीं बता सकते? उन्होंने ये परिमाण श्रुति की ही परिभाषा में क्यों बताए? यदि $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$ इत्यादि संवादों के परिमाण वे देते तो यह बात स्पष्ट हो जाती कि हम लोगों की हमारी स्वर-संवादों की कल्पना जो आज है ठीक वही भरत की भी थी। वह वैसी हो भी तो उसकी उक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। अब यह संदिग्धता उन्होंने क्यों रखी; इस बात पर विचार विनिमय की आवश्यकता है। कान की श्रवण-कुशाग्रता से ही उनको काम लेना होता तो श्रुतियों के आडम्बर की भी आवश्यकता

न थी। $\frac{\text{सां}}{\text{सा}}$ $\frac{\text{प}}{\text{सा}}$ $\frac{\text{म}}{\text{सा}}$ $\frac{\text{ग}}{\text{सा}}$ तथा $\frac{\text{ग}}{\text{सा}}$

ये सब संवाद गणित के आँकड़े न बताते हुए भी केवल कान की श्रवण-कुशाग्रता के ही आधार पर बताते। वैसे तो संगीत के मूल ध्वनिशास्त्र के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर

पाश्चात्य पंडितों द्वारा लिखा हुआ साहित्य, जिसमें गणित-सिद्ध ध्वन्यन्तर परिमाण भी उपलब्ध थे, महर्षि के समय भारत में प्राप्त रहा होगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता। पर इन गणितीय आँकड़ों के लिये भरतमुनि को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा होगा, यह कहना धृष्टता होगी। उन्होंने "श्रुति" के ही द्वारा स्वर तथा ग्राम समझाए, इस बात में कुछ तो रहस्य होगा ? क्या शास्त्र एवं कला का सामंजस्य करते हुए उनको संवाद तथा गणितीय आँकड़ों से अड़चन प्रतीत हुई ? क्योंकि यह अड़चन सदैव रहेगी। प्रत्यक्ष गायन-वादन में गणित के आँकड़ों द्वारा अथवा किसी श्रवण-कुशाग्रता द्वारा निश्चित किये हुए ही स्वर ठीक सदैव लगाने का उत्तरदायित्व गायक-वादकों को स्वीकृत होगा ही, यह कहा नहीं जा सकता। सम्भव है सब श्रुतियाँ समान मानकर पंचम, मध्यम ठीक उन स्थानों पर न आते हों, जहाँ उन्हें भरत चाहते थे; तो इसलिए उनको संवादों का उल्लेख करना पड़ा हो जैसे कि पश्चात् के कुछ ग्रन्थकारों ने किया है। पर इसी को लेकर आज कल के संवादों के परिमाण अर्थात् $\frac{3}{2}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{5}{4}$, $\frac{6}{5}$ ये जो भरत को मान्य थे, यह बात ग्रहण करके उन के षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम प्रस्थापित करना ठीक समझा। यद्यपि उन्होंने १३ तथा ९ श्रुति के ध्वन्यन्तर क्रमशः षड्ज-पंचम तथा षड्ज-मध्यम संवादों के अतिरिक्त और कोई लक्षण संवादों का नहीं दिया है। हम लोग उन श्रुतियों के परिमाण भी भिन्न-भिन्न मानेंगे, यह सब कहाँ तक शास्त्र विहित होगा; यह एक जटिल-समस्या है। ग्रंथों की भाषा शिथिल होने के कारण उन उक्तियों के भिन्न-भिन्न अर्थ, वाच्यार्थ, व्यंगार्थ, ध्वन्यर्थ निकलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। "मुनीनाम् पुनराद्यानाम् वाचमर्थोऽनुधावति" यह सुभाषित सर्व विदित ही है।

प्रत्येक शास्त्रकार को उन स्वरों की परिभाषा देने की आवश्यकता है, जिनके द्वारा संगीत वह समझाने जा रहा है। उपलब्ध साधनों द्वारा अपनी-अपनी रीति से उनके ध्वन्यन्तरों के साथ भी समझाना आवश्यक है। भरतमुनि के समय जो स्वरग्राम प्रचलित थे उनके स्वरों के पारस्परिक ध्वन्यन्तर बताने के लिये "श्रुति" जैसे सूक्ष्म-ध्वन्यन्तर के अतिरिक्त और कोई साधन उपलब्ध न रहा हो, गणितीय सिद्धांत द्वारा उन पर नियंत्रण रखना उन्होंने योग्य न समझा हो, कारण कुछ भी हो; श्रुति की ही परिभाषा में स्वरांतरों को समझाना उन्होंने श्रेयस्कर समझा। संगीत लक्ष्यप्रधान शास्त्र है। वह समय-समय के प्रचलन पर आधारित होता है। भरत के षड्जग्राम, मध्यमग्राम, जिनके आधार पर वे श्रुति एवं स्वर-संवाद समझा रहे हैं, आज प्रचार में नहीं हैं। अब उन श्रुतियों एवं उन संवादों को केवल अपने-अपने कान की कुशलता के आधार पर सिद्ध करने का उपदेश हम लोगों को मिल रहा है। इसमें न जाने किसके कान कहाँ पहुँच जायं। कम-से-कम गणित का भी आधार लिया जाता तो भी उनमें निश्चितता आती। वह तो लिया नहीं गया, यद्यपि उक्त उपदेश का आशय $\frac{\text{प}}{\text{सा}} = \frac{3}{2}$; $\frac{\text{म}}{\text{सा}} = \frac{4}{3}$; $\frac{\text{ग}}{\text{सा}} = \frac{5}{4}$ यही है जो स्पष्ट दिखाई देता है।

भरतनाट्यशास्त्र से पूर्व भी ग्रीस के विद्वान् संवादों से परिचित थे, यह एक

ऐतिहासिक सत्य है। षड्ज-पंचम-संवाद आरोही वर्ण में तथा षड्ज-मध्यम-संवाद अवरोही में, जिसको "सायकल आफ दि फिफ्थ" कहते हैं; ग्रीस के विद्वानों ने भरत-नाट्य-शास्त्र के समय से कई शताब्दियों पूर्व समझाये थे। तो क्या हमारे भरतमुनि इन संवादों के लिये ग्रीक विद्वानों के ऋणी थे ? इन संवादों द्वारा भरत मुनि के षड्ज-मध्यम-ग्राम सिद्ध करने के सिलसिले में यह भी एक बात सिद्ध होने जा रही है कि लगभग वही संगीत प्रणाली भारत में भी भरतमुनि के समय प्रचलित थी, जो ग्रीस में उस समय थी। अब प्रश्न उठता है कि स्वरसप्तक प्रस्थापित करने में कौन किसका ऋणी है ? भारत ग्रीस का अथवा ग्रीस भारत का ? भारत का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रंथ जिसमें संगीत का कुछ विवरण शास्त्रीय रीति से आया हुआ है, यही भरत का नाट्य-शास्त्र है। वास्तव में यह ग्रंथ नाट्यकला पर लिखा हुआ है। उसका एक अङ्ग—महत्वपूर्ण अङ्ग—संगीत है। उसमें अन्तिम दो-चार अध्याय महर्षि ने संगीत पर लिखे हैं। यह भरत-नाट्य-शास्त्र नाट्यवेद नामक किसी प्राचीन ग्रंथ का—जिसके रचयिता कोई आदिभरत अथवा ब्रह्मभरत नाम के ऋषि समझे जाते हैं—पश्चात् कालीन संस्करण है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। सम्भव है इस भरत-नाट्य शास्त्र में—जो आज उपलब्ध है—कुछ प्रक्षिप्त भाग हो, जो मूल नाट्यवेद में न रहा हो, पर समय-परिवर्तन के कारण उसको इस पश्चात्-कालीन संस्करण में जोड़ना आवश्यक जान पड़ा हो। यह कहना कठिन है कि संगीत पर लिखे हुए अध्याय केवल रंगभूमि के उपयुक्त संगीत को बताते हैं अथवा संपूर्ण संगीत को एक स्वतंत्र कला तथा शास्त्र के रूप में भी बताते हों। क्या भरत-नाट्य-शास्त्र से पूर्व अन्य देशों में कोई संगीत का साहित्य निर्माण नहीं हुआ था ? ऐसा कोई साहित्य पुस्तक रूप में, चर्चा के रूप में और प्रत्यक्ष प्रयोग के रूप में भारत में उपलब्ध न रहा होगा ? ऐसा न हुआ होगा तो संवादों की कल्पना भरतमुनि की श्रवण-शक्ति का ही फल समझना चाहिये और आज हम लोगों की भी श्रवण-शक्ति भरत मुनि की शक्ति से कम नहीं है, यह भी मानना होगा। तभी हम लोग स्वर-संवादों द्वारा भरत के षड्ज-ग्राम एवं मध्यमग्राम सिद्ध कर सकते हैं।

भरतमुनि के सारणा-चतुष्टय में हम लोग मध्यमग्राम के ऋषभ-पंचम-संवाद द्वारा भरत का प्रमाण-श्रुति समझाते हैं। भरत की वीणा पर पर्दे नहीं थे। नौ तार थे। यह एक महत्वपूर्ण बात है। ऋषभ-पंचम का संवाद साधते हुए पंचम के तार को उतारना है। माना कि पंचम, ऋषभ के साथ संवाद को इतना उतारा गया। यही है भरत की प्रमाण श्रुति। अब इस नये उतरे हुए पंचम को षड्जग्राम का ही मानकर वीणा को षड्जग्राम की करनी है। पर इस प्रमाण-श्रुति के नाम से पंचम के अतिरिक्त शेष सब स्वरों के तार एक श्रुति उतारने के लिये किसके कान समर्थ हैं ? और इस प्रथम सारणा का फल क्या ? तो चलवीणा के स्वर ध्रुववीणा के स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे बजेंगे। जब ध्रुव वीणा के किसी स्वर से चल वीणा का स्वर समीकरण (तल्लीनता) इस प्रथम सारणा में उद्दिष्ट ही नहीं है तो पंचम के अतिरिक्त अन्य स्वर उनकी अपनी-अपनी पिछली दूसरी श्रुति से ऊपर कहीं भी उतारे गये तो बाधा ही

'भातखण्डे हाऊस' बाणगंगा, वालकेश्वर बम्बई ६

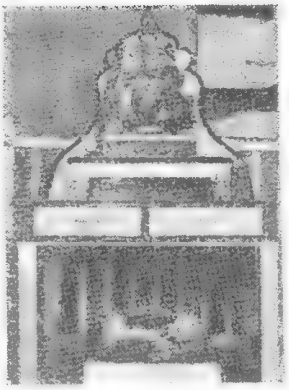

दत्तात्रेय का मन्दिर

कनिष्ठ भ्राता
स्व० श्री हरि नारायण भातखण्डे

भ्रातृ-स्नुषा
श्रीमती रमाबाई भातखण्डे

पण्डित भातखण्डे
[१८९६]

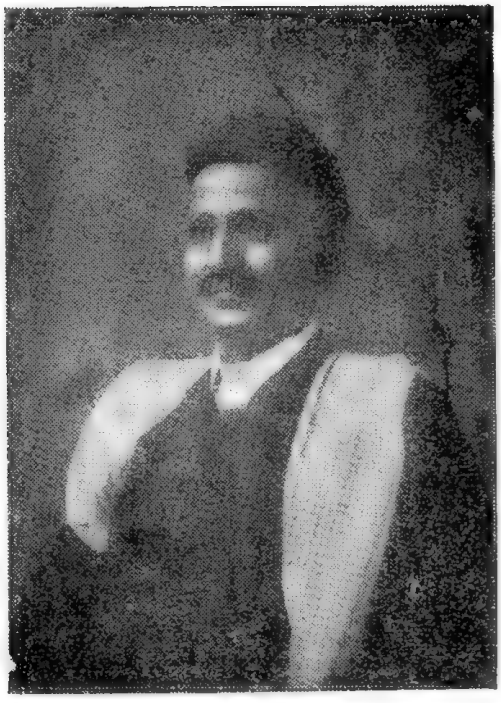

पण्डित भातखण्डे
[१९१२]

पण्डित भातखण्डे
[१९१६]

कौन-सी होगी ? इस प्रमाणश्रुति की आवश्यकता क्या है ? क्योंकि दूसरी सारणा में आगे विद्वानों का उपदेश है कि चल वीणा के गांधार निषाद उतने ही उतारे जाएँ कि वे ध्रुव वीणा के क्रमशः ऋषभ धैवत में मिल जाएँ। जैसे प्रथम सारणा में एक प्रमाण श्रुति बतायी गयी—यद्यपि उसका उपयोग षड्ज-ग्राम के सात स्वर स्थानों के अतिरिक्त अन्य अधिक सात-सात स्वर नाद स्थानों की प्राप्ति के सिवाय और कुछ नहीं है—वैसे अन्य एक प्रमाणश्रुति इस दूसरी सारणा में रहनी चाहिये, और इस नये श्रुति प्रमाण से अन्य सब स्वर अर्थात् सा, री, ग, म, ध, नी उतारे जायें। भरत ने तो सारणा समझाते हुए अन्य किसी श्रुति प्रमाण का उल्लेख किया ही नहीं है। उनकी प्रमाण-श्रुति तो केवल षड्जग्राम के पंचम को मध्यम-ग्राम का पंचम बनाने के लिये जो ध्वन्यन्तर आवश्यक है, वही एक समझ में आता है। भरतमुनि के अनुसार दूसरी सारणा में भी चलवीणा में प्रथम पंचम को मध्यम ग्राम का पंचम बनाकर उसकी अपेक्षा वीणा को षड्ज ग्राम की करना है। भरत ने प्रमाण-श्रुति बतायी ही है। उसी परिमाण से पंचम को दूसरी बार और नीचे उतारना है। पर पंडितों को यह परिमाण मान्य नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि, प्रथम पंचम उतारा जाए अथवा प्रथम गांधार निषाद ध्रुव वीणा के ऋषभः धैवत के स्थानों पर उतारे जाएँ और तत्पश्चात् ऋषभ का षड्ज मध्यम भाव का संवादी पंचम मिलाया जाए। भरत ने तो केवल इतना ही कहा है कि दूसरी सारणा में जो पहली सारणा के ही सदृश करनी चाहिए—"पुनरपि तद्वदेवापकर्षात्।" चल वीणा के गांधार निषाद ध्रुववीणा के क्रमशः ऋषभ-धैवत में मिल जायेंगे—"गांधार-निषादावपि इतरस्यां ऋषभ-धैवतौ प्रविशतो द्विश्रुत्यधिकत्वात्।" भरत मुनि के अनुसार दूसरी सारणा में चलवीणा के गांधार निषाद, ध्रुव वीणा के ऋषभ धैवत में, तीसरी सारणा में चल वीणा के ऋषभ धैवत ध्रुव वीणा के षड्ज पंचम में तथा चौथी सारणा में चल वीणा के षड्ज मध्यम तथा पंचम ध्रुव वीणा के क्रमशः मंद्र निषाद, गांधार तथा मध्यम में मिल जायेंगे, जबकि पंडितों के अनुसार ये ही स्वर उक्त स्थानों पर मिला लिए जाएंगे। यह एक बड़ा भेद है। कानों की श्रवण-कुशाग्रता के द्वारा संवादों की सहायता से भरत का प्रथम षड्ज-ग्राम मिलाना, तत्पश्चात् सारणा-चतुष्टय द्वारा स्वरों के बीच में भिन्न-भिन्न परिमाण की श्रुतियाँ बिठाना ही भरत का श्रुति-सिद्धांत हो; यह बात जँचती नहीं। इस विचार धारा को मुख्य आधार पाश्चात्यों के ध्वनिशास्त्र सिद्धांतों का ही है; चाहे हम लोग यह ऋण स्वीकार करें या न करें। नहीं तो निरे कानों के भरोसे संवाद परख कर स्वर-ग्राम वीणा पर बाँधना एक अत्याचार होगा। स्वयम् भरतमुनि को यह रीति कहाँ तक ग्राह्य होती, यह भी एक प्रश्न है।

अरणासाहब अपनी श्रुति-स्वर चर्चा में यह कहते रहे हैं कि ग्रन्थवाक्यों का सरल अर्थ लगाना चाहिए। उन वाक्यों का अर्थ लगाते हुए अपनी निजी कल्पनाएँ तथा ग्रन्थ के पश्चात् काल में प्रचलित विचार, सिद्धान्तादि के द्वारा उनका निर्णय करना उनको उचित नहीं लगता था। और जो रीति-रिवाज, जो प्रथा, जो प्रणाली सदियों पूर्व मिट चुकी है, जब से कि प्रचलित संगीत अपने प्राचीन स्वरूप से बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है; तब उनकी, उस प्राचीन स्वरूप की चर्चा उस समाज के लिये करना जिसकी सेवा

में लक्ष्यसंगीत अर्पण किया जा रहा था, निरुपयोगी होगा। केवल ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण के अतिरिक्त उसका और कुछ उपयोग न होगा; यही अण्णासाहब की धारणा तथा भूमिका थी। प्रचलित संगीत को मिटाकर पुनश्च प्राचीन संगीत रूढ़ करना, यह विचार उनको ठीक नहीं लगा। उन्होंने अपने ग्रन्थों में बताया ही है कि प्रचलित संगीत अर्थात् लक्ष्यसंगीत का स्पष्टीकरण एक सुबोध, सरल प्रणाली द्वारा करना ही मेरा उद्देश्य है।

शार्ङ्गदेव के पश्चात् ग्राम, मूर्च्छना और जाति की प्रणाली मिटकर उत्तर भारत में राग-रागिणी प्रणाली तथा दाक्षिणात्य संगीत में जन्य-जनक (मेल एवं तज्जन्य राग) प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। उत्तर भारतीय संगीत के कई प्राचीन ग्रन्थों में भी यह जन्य-जनक प्रणाली ही स्वीकृत की गयी है। एक सप्तक में ही सा से सां तक शुद्ध-विकृत स्वरों का समावेश होने पर मध्यकालीन संगीत पंडितों ने जन्य-जनक प्रणाली प्रचलित की। इस प्रणाली के अनुसार षड्ज तथा पंचम, जो अचल स्वर थे और अब भी हैं, एवं शेष पाँच स्वरों की शुद्ध-विकृत अवस्थाओं में से कोई एक प्रत्येकशः लेकर सप्तस्वर युक्त मेल बनाए गये। एक-एक मेल में लगते हुए स्वर, शुद्ध-विकृत जो कुछ हों; उन्हीं में से पूरे सात, छः अथवा पाँच स्वर जिन रागों में लगते हों, उन सबको एकत्रित करके उस मेल में समाविष्ट करके उनका वर्गीकरण किया गया। अहोबल के संगीत पारिजात में इस प्रकार सहस्रों मेलों की सूची दी गई है, जिनको वे मूर्च्छना कहते हैं; जबकि रागाध्याय में रागों का वर्गीकरण मेलों में न करते हुए प्रत्येक राग के शुद्ध विकृत स्वर बताये गये हैं। अन्य अनेक मध्यकालीन ग्रन्थकार रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमखी, तुलजेन्द्र आदि दाक्षिणात्य तथा लोचन, हृदयनारायण देव, पुण्डरीक विट्ठल आदि उत्तरभारतीय मेल-राग प्रणाली ही मानते हैं।

राग रागिनी प्रणाली दामोदर के संगीत दर्पण, (नारद के) संगीत मकरंद, पुंडरीक विट्ठल की रागमाला, लोचन की रागतरंगिणी इत्यादि ग्रन्थों में बतायी गई है। परन्तु यह किन तत्वों पर आधारित है, इस बात पर किसी ग्रन्थ में संतोषजनक स्पष्टीकरण न होने के कारण उसको स्वीकार करना शास्त्रीय संदर्भ में मान्य न होगा। हाँ, रागांग-वर्गीकरण की सूचना उसमें अवश्य मिलती है, परन्तु रागों के मध्यकालीन स्वरूपों में भी परिवर्तन होकर आज वे कुछ के कुछ हो गये हैं। उनका राग-रागिनी वर्गीकरण, जो ग्रन्थों में बताया है आज मान्य नहीं हो सकता। अब उनका नया ही वर्गीकरण करना होगा। कान्हड़े, मल्लार, सारंग, नट के प्रकार, कल्याण-प्रकार, केदार, बिहाग प्रकार, बिलावल प्रकार, भैरव प्रकार, तोड़िया इत्यादि रागांग वर्गीकरण राग-रागिनी वर्गीकरण के सदृश्य ही हैं। इस रागांग वर्गीकरण की सूचना आज की प्रणाली में "आश्रय राग" के द्वारा मिलती है। अण्णासाहब ने मेल-राग प्रणाली ही स्वीकृत की है और रागों का वर्गीकरण दस मेलों में किया है। दस लोकप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय चौड़े रागों के स्वरों के मेल उन्हीं रागों के नाम देकर उन्होंने समझाए हैं। इन मेलों के नाम तथा स्वरूप इस प्रकार हैं :—

१—बिलावल— सा री ग म प ध नि सां
२—कल्याण— सा री ग म́ (तीव्र) प ध नि सां
३—खमाज — सा री ग म प ध नि̲ (कोमल) सां
४—भैरव — सा री̲ (कोमल) ग म प ध̲ (कोमल) नि सां
५—पूर्वी — सा री̲ (कोमल) ग म́ (तीव्र) प ध̲ (कोमल) नि सां
६—मारवा — सा री̲ (कोमल) ग म́ (तीव्र) प ध नि सां
७—काफी — सा री ग̲ (कोमल) म प ध नि̲ (कोमल) सां
८—आसावरी-सा री ग̲ (कोमल) म प ध̲ (कोमल) नि̲ (कोमल) सां
९—भैरवी — सा री̲ (कोमल) ग̲ (कोमल) म प ध̲ (कोमल) नि̲ (कोमल) सां
१०—तोड़ी — सा री̲ (कोमल) ग̲ (कोमल) म́ (तीव्र) प ध̲ (कोमल) नि सां

जिन रागों के नाम इन मेलों (थाटों को) को दिये गये हैं वे सब राग सुपरिचित हैं एवं गायकी की दृष्टि से विस्तृत हैं, जिसके कारण उन्हें आश्रयराग भी कहा गया है। इन रागों के अंग-प्रत्यंगों से अनेक तालमेलजन्य राग बने हुए हैं। मेल द्वारा राग में लगते हुए स्वर तथा आश्रय-राग द्वारा रागांग निश्चित करके रागों के वर्णन किए गये हैं। वास्तव में रागों के आज के प्रचलित स्वरूपों की जानकारी प्राप्त करने में जितनी सहायता अण्णासाहब को परंपरागत रागदारी चीजों से तथा गायक-वादकों के गायन-वादन से मिली, उसकी दशांश सहायता भी मध्यकालीन अथवा प्राचीन ग्रन्थों से नहीं मिली। ग्रन्थों में वर्णन किये हुए भैरव, भैरवी, केदारा, हमीर, बसंत जैसे लोक-प्रसिद्ध प्रचलित रागों के भी स्वर उनके स्वरों से भिन्न हैं। अण्णासाहब ने अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रत्येक राग का वर्णन करते हुए उसकी पूर्वपीठिका, प्राचीन मध्यकालीन ग्रन्थों में उसका संदर्भ, उसका पूरा इतिहास तथा उसका आज का प्रचलित स्वरूप स्वरलिपि सहित स्पष्ट समझाया है। परंपरागत रूढ़ि को मिटाकर ग्रन्थगत रागस्वरूपों को पुनः प्रचलित करना संगीत जैसी क्रिया सिद्ध कला के संबंध में कहाँ तक लाभकारक है; यह प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा ही सिद्ध हो सकता है।

भरत मुनि के समय के संगीत का उत्खनन पुराणवस्तु संशोधन की दृष्टि से चाहे उपयोगी हो, पर संगीत के प्रचलित तथा भावी स्वरूप के लिये कहाँ तक उपयोगी होगा, कहा नहीं जा सकता। आज के गायक-वादक अपनी परंपरागत गायन शैली को, अपने परम्परागत राग स्वरूपों को तिलांजलि देकर भरत-शार्ङ्ग-देवादिकों के प्राचीन गाने-बजाने की बात को स्वीकार करेंगे, यह विश्वास अण्णासाहब को न था और इसीसे उन्होंने लक्ष्यसंगीत (आज के प्रचलित संगीत) का ही स्पष्टीकरण करना अपना कर्तव्य समझा। यह उनका कार्य कहाँ तक सफल हुआ, सर्व साधारण जनता को उससे कौन-सा, कितना लाभ हुआ; यह बात सर्व विदित है। इतनी बात निश्चित है कि बिखरी हुई संगीत संपत्ति को एकत्रित करके ग्रन्थित करने के कार्य के लिये

किसी न किसी का जीवन काम आने वाला था। परमात्मा ने अण्णासाहब को इसके लिये चुना।

इसी समय जब कि बड़ौदा में संगीत परिषद् हो रही थी, अण्णासाहब ने "गीत-मालिका" नाम से अपनी संग्रह की हुई रागदारी चीजों को स्वरलिपि सहित छपवाकर प्रकाशित करना आरंभ किया। हर महीने में एक भाग प्रकाशित होता था। हर भाग में पच्चीस चीजें रहती थीं। मूल्य केवल चार-चार आने रखा। केवल मुद्रण का खर्च निकल आये, उतना ही मूल्य उन्होंने रखा। इस मालिका के तेईस भाग प्रकाशित हुए थे। सब भागों में मिलकर लगभग साढ़े पाँच सौ चीजें स्वरलिपि सहित प्रकाशित हुईं। इस प्रकाशन में दो वर्ष लगे।

इसी बीच में गायन उत्तेजक मंडली के उद्देश्य एवं कार्य में परिवर्तन होने लगा। अण्णासाहब का गायन उत्तेजक मंडली के नये संचालकों के साथ मतभेद हुआ। अतएव वे तथा उनके कुछ पारसी मित्र तथा अनुयायी गायन उत्तेजक मंडली से अलग हो गये और अन्य एक पारसी लोगों की ही संस्था "गुड लाइफ़ लीग" के कार्यालय में, जो बम्बई में फ़्लोरा फाउन्टन पर था, संगीत शिक्षा की कक्षाएँ उन्होंने खोलीं। इसमें अण्णासाहब स्वयं तथा वाड़ीलाल जी सिखाया करते थे। अन्तूबुआ जोशी के एक शिष्य सीताराम मोदी नाम के थे, जो बाद में अण्णासाहब से तथा वाड़ीलाल जी से सीखने लगे थे। इनको भी कुछ वेतन देकर अण्णासाहब ने छात्रों को सिखाये गये पाठों को दुहराने के काम पर रखवाया। इस नयी संस्था का नाम "श्री शारदा संगीत मण्डल" था। यह संस्था मकान की चौथी मंजिल पर, तीन जीने ऊपर थी। अण्णासाहब की अवस्था उस समय ५६-५७ वर्ष की थी। ब्लड् प्रेशर का रोग उनको था। मकान पर कोई लिफ़्ट थी नहीं। सीढ़ियाँ चढ़ के ही जाना पड़ता था। इन असुविधाओं को सहन करते हुए भी केवल संगीत सेवा व्रत की दृष्टि से एक पाई का भी लोभ न रखते हुए बल्कि अपनी गाँठ से खर्च करके वे यह कार्य करते रहे। वकालत का व्यवसाय सन् १९१० में ही छोड़कर अब अपना सम्पूर्ण समय संगीत की ही सेवा में लगाते रहे। शारदा संगीत मण्डल बहुत लोकप्रिय हुआ और बहुत विद्यार्थी उसमें भर्ती हुए। अण्णासाहब का नाम ग्वालियर में भी स्व० महाराज माधवराव सिंधिया के कानों तक पहुँचा। बड़ौदा की संगीत परिषद् की ख्याति समस्त भारत भर में फैल चुकी थी। इस परिषद् के सूत्रधार अण्णासाहब ही थे। बड़ौदा राज्य में तो संगीत क्षेत्र में अण्णासाहब के ही मार्ग दर्शन से सब काम चल रहा था। स्वयम् श्रीमान् महाराज का अण्णासाहब पर पूर्ण विश्वास था और वे अण्णा-साहब को बहुत मानते थे। कोई आश्चर्य नहीं कि ग्वालियर महाराज पर भी अण्णा-साहब तथा उनके कार्य का प्रभाव पड़ा हो। सन् १९१६-१७ में किसी कार्यवश ग्वालि-यर महाराज बम्बई पधारे थे। एक रोज उन्होंने अण्णासाहब को अपने बम्बई के निवास स्थान पर आमंत्रित किया। संगीत पर खूब बातचीत हुई। अण्णासाहब ने शारदा संगीत मंडल में श्रीमान् महाराज को निमन्त्रित किया। महाराज ने निमन्त्रण तो स्वीकार किया, पर वे सादा लिबास में मण्डल में पधारे। किसी को यह पता न था कि यहाँ ग्वालियर नरेश महाराज माधवराव सिंधिया हैं। महाराज अण्णासाहब की

सिखाने की प्रणाली तथा अनुक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मंडल के छात्रों से भी अलग-अलग एक-एक को गवाकर सुनाया गया। महाराज के लिये तो यह एक नया एवं आकर्षक अनुभव था। आश्चर्य और आनन्द-विभोर होकर महाराज अण्णासाहब से बोले "भातखण्डे जी, इसी प्रकार आप ही की देखभाल में मेरे ग्वालियर में एक संगीत विद्यालय चलाया जाय तो कितना अच्छा हो। मुझे आशा ही नहीं, पूरा विश्वास भी है कि ग्वालियर में आपको अच्छे छात्र संगीत शिक्षा के लिए मिलेंगे। क्या आप अपना सहयोग देने की कृपा कीजिएगा ?" संगीत क्षेत्र में किसी सत्कार्य के लिए अण्णासाहब को कब इन्कार था। महाराजा ने ग्वालियर लौटते ही एक सरकारी पत्र अण्णासाहब के नाम लिखवाया और उनको ग्वालियर आकर संगीत विद्यालय के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए आमन्त्रित किया। इधर अण्णासाहब ने स्थूल रूप में संगीत विद्यालय की एक योजना लिखकर रख ली थी। अब ग्वालियर की स्थानीय परिस्थिति एवं सरकार की ओर से मिलने वाली सहायता तथा अन्यान्य सहयोग की सीमा समझकर एक विस्तृत योजना पूर्ण करने हेतु ग्वालियर गए। महाराजा साहब के साथ पूरा विचार-विनिमय हुआ। अण्णासाहब के ही निर्धारित अभ्यास-क्रम एवं शिक्षा-प्रणाली के अनुसार, उनके मार्ग दर्शन में ग्वालियर का प्रख्यात माधव संगीत महाविद्यालय सन् १९१८ में श्रीमान् महाराज माधवराव सिंधिया के कर कमलों द्वारा खुल गया, जो अब भी उसी प्रकार कार्य कर रहा है। महाराज की बहुत इच्छा थी कि अण्णासाहब ग्वालियर में ही रहकर संगीत विद्यालय के प्रधान संचालक का पद ग्रहणकर कार्य करें। पर अण्णासाहब ने अपने जीवन भर कभी किसी की नौकरी नहीं की और न अब करना ही चाहते थे। संगीत द्वारा भी एक पाई का कभी लाभ न उठाया था, न अब चाहते थे। अतः अपनी शिक्षा प्रणाली का संपूर्ण ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त कराने के लिए ग्वालियर के ही छः सात गायकों को चन्द महीनों के लिये बम्बई भेज देने के लिए उन्होंने ग्वालियर सरकार को परामर्श लिखकर भेजा। इस परामर्श के अनुसार सर्व श्री राजाभैया, कृष्णराव दाते, भास्करराव खांडेपारकर, विष्णुबुआ देशपांडे, श्री गोखले, श्री बलवन्त राव सांवले (भजनी) तथा श्री चुन्नीलाल कत्थक इत्यादि सज्जन, जो स्वयम् ग्वालियर गायकी के कुशल गायक थे; बम्बई आकर ग्वालियर सरकार के जयविलास महल में छः-सात महीने ठहरे और प्रतिदिन अण्णासाहब के यहाँ जाकर हिन्दुस्तानी संगीत प्रणाली के मूल सिद्धान्त, राग, उनके नियम, संगीत रचना के सिद्धांत, अण्णासाहब की स्वयं संग्रहीत चीजें, उनके द्वारा रचित लक्षणगीत इत्यादि विषय उनसे सीखने लगे। इसी समय ग्वालियर की संगीत पाठशाला का पंचवर्षीय शिक्षाक्रम भी बनाया गया। हरएक वर्ष के क्रमशः पाठ्यक्रम के राग तथा चीजें इन सज्जनों के साथ निश्चित करके अण्णासाहब ने अब पाठ्यक्रम के अनुसार शालोपयोगी क्रमिक पुस्तक लिखना आरम्भ किया। ग्वालियर से आये हुए गायकों के पास भी स्थानीय गाए जानेवाले पाठों के अनुसार ख्याल, ध्रुवपदों का संग्रह था ही। ग्वालियर की संगीत पाठशाला में इन्हीं का उपयोग करना अण्णासाहब ने उचित समझा। अतएव राजाभैया, दाते, गोखले तथा खांडेपारकर को ग्वालियर के ख्याल, ध्रुवपद स्वरलिपि सहित लिखकर तैयार रखने के लिये अण्णासाहब ने सूचना दी।

स्वरलिपि तो अण्णासाहब ने इन सज्जनों को समझा ही दी थी। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार होने लगीं। इन सज्जनों के द्वारा लिखकर लाई गई चीजें अण्णासाहब के यहाँ बैठ कर गाई जातीं, जो सबको आती थीं। बहुत सी तो अण्णासाहब के अपने संग्रह में इनमें से लिखी थीं। इनमें पाठभेद हो तो उन पर विचार करके सबकी सम्मति से एक पाठ निश्चित करके उसको पाठ्यपुस्तकों के लिए पक्का करके लिखा जाता था। इस समय तक गीतमालिका की लगभग २२ पुस्तकें छपकर प्रकाशित हो चुकी थीं। अब क्रमिक पुस्तक-मालिका छपना आरम्भ हुआ। गीतमालिका स्थगित हो गई। यही क्रमिक पुस्तकें अब भी भारत भर की संगीत पाठशालाओं तथा विश्वविद्यालयों में जहाँ हिन्दुस्तानी संगीत सिखाया जाता है; पढ़ाई जाती हैं।

पूर्व भारत की संगीत शोध यात्रा में अण्णासाहब दक्षिण हैदराबाद भी गए थे, यह बताया ही गया है। हैदराबाद में काशीनाथ शास्त्री अर्थात् अप्पा तुलसी नामक एक संस्कृत के विद्वान् से—जिन्होंने संगीत में भी पर्याप्त प्रगति की थी, स्नेह हो गया। अण्णा-साहब के संगीत शोध कार्य से वे भली-भाँति परिचित हुए थे। अण्णासाहब के "श्रीमल्ल-क्ष्यसंगीत" तथा "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" प्रथम भाग पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए। अण्णा-साहब की लिखी हुई संगीत प्रणाली के ही अनुसार, इन शास्त्रीजी ने भी छोटे-छोटे श्लोकों द्वारा राग नियम समझाने वाली छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर अण्णासाहब के पास प्रकाशित करने के लिये भेजीं। इन पुस्तकों के नाम संगीत सुधाकर, संगीत रागकल्प-द्रुमांकुर, संगीत-रागचंद्रिका थे। ये तीनों पुस्तकें संस्कृत में थीं तथा राग-चंद्रिकासार नामक एक और पुस्तक हिन्दी में लिखी हुई थी। इन चारों पुस्तकों को छपवाकर अण्णासाहब ने प्रकाशित किया। अपनी क्रमिक पुस्तकों में भी इन पुस्तकों के श्लोक राग नियमों को समझाते हुए अण्णासाहब ने उद्धृत किए हैं। इसी समय अण्णासाहब ने और छोटी दो पुस्तिकाएँ—अभिनव राग मंजरी तथा अभिनव ताल मंजरी प्रकाशित कीं तथा अभिनव राग मंजरी को संस्कृत भाषा में प्रत्येक राग एवम् प्रत्येक ताल पर श्लोक रचकर प्रकाशित किया है।

अण्णासाहब के संगीत क्षेत्र में अधिकार एवम् उनके किये गये कार्य से परिचित-प्रभावित एक और उस्ताद रामपुर दरबार में थे काले नज़ीर खाँ। बंबई के नज़ीर खाँ तथा उनके भाई-बेटों द्वारा तथा उनकी सिखाई हुई गायिकाओं द्वारा अण्णासाहब के राग-ताल लक्षणगीत इन काले नज़ीर खाँ के सुनने में आए। लखनऊ में अकबरपुर के तालुकेदार ठाकुर नवाब अली साहब के यहाँ काले नज़ीर खाँ का आना-जाना होता था। इन ठाकुर साहब को संगीत से भी बहुत लगन थी। वे हार्मोनियम बहुत कुशलता पूर्वक बजाया करते थे। इन्होंने भी अण्णासाहब का नाम सुना साथ ही अण्णासाहब से पत्र व्यवहार भी किया। अण्णासाहब ने पत्रों द्वारा उनको अपने संगीत संबंधी विचार एवम् प्रचलित संगीत शिक्षा पर अपनी रची हुई प्रणाली समझायी। साथ-साथ अपनी प्रका-शित पुस्तकें भी भेजीं। ठाकुर साहब को इस पत्र-व्यवहार से इतना हर्ष हुआ कि वे तुरंत अपने को अण्णासाहब के शिष्य कहने लगे। अण्णासाहब की ही सम्मति पाकर उन्होंने इसी प्रणाली की उर्दू में एक पुस्तक, मय लक्षणगीतों के प्रकाशित की। इस पुस्तक का

नाम "मारिफुन्नगमात" है। यह पुस्तक विशेष रूप से गायक-वादकों में बहुत पसंद की गई। लगभग सभी गायक-वादक इस पुस्तक को अपने संग्रह में रखते थे और अब भी रखते हैं। ठाकुर नवाब अली साहब सन् १९१२ में बंबई आये थे। मेरी संगीत शिक्षा उस समय अण्णासाहब के पास हो रही थी। मैंने ठाकुर साहब को अण्णासाहब के घर पर देखा था। इसके पश्चात् दूसरी बार गायन उत्तेजक मंडली में भी देखा, जहाँ उनके हार्मोनियम-वादन का कार्यक्रम था। ठाकुर साहब को अपनी युवावस्था से ही संगीत से प्रेम था। बड़े-बड़े कलाकारों की बैठकों में उनका जाना-आना होता था। प्रख्यात हार्मोनियम वादक स्व० गणपतराव भैया की बैठकों में भी जाकर उनका हार्मोनियम वादन ठाकुर साहब ने पर्याप्त सुना था। और उन्हीं के ढंग से हार्मोनियम बजाना आरम्भ किया तथा उसमें पर्याप्त प्रगति भी की। ठाकुर साहब जिस ढंग से, जिस सफाई के साथ हार्मोनियम बजाते थे, उस प्रकार का हार्मोनियम-वादन बंबई में किसी ने इससे पूर्व कभी नहीं सुना था। सब लोग ठाकुर साहब का हार्मोनियम-वादन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ौदा की अखिल भारतीय संगीत परिषद् के सभापति ये ही ठाकुर नवाब अली साहब थे। इन्हीं ठाकुर साहब की सिफारिश पर काले नज़ीर खाँ अण्णासाहब द्वारा रचित लक्षणगीत तथा उनकी समझायी हुई लक्ष्यसंगीत की प्रणाली अण्णासाहब से ही सीखने बंबई आये और दो-चार महीने रहे थे। पश्चात् रामपुर लौटकर उन्होंने अपनी शिष्याओं को भी ये लक्षणगीत सिखाये। समस्त उत्तर हिन्दुस्तान में अण्णासाहब का नाम प्रख्यात हो गया। रामपुर दरबार में भी अण्णासाहब का नाम ठाकुर नवाब अली साहब तथा काले नज़ीर खाँ द्वारा पहुँचा। ठाकुर साहब का विशेष स्नेह संबंध रामपुर दरबार के साहब ज़ादा प्रिंस सादत अली उर्फ छम्मन साहब से था। छम्मन साहब स्वयम् सुरसिंगार बजाते थे। इनके पिता प्रिंस हैदरअली साहब भी सुरसिंगार बहुत अच्छा बजाते थे और उन्होंने ही छम्मन साहब को सिखाया था। प्रिंस हैदरअली साहब स्वयं प्रख्यात सेनिये बहादुर हुसेन खाँ साहब से सुरसिंगार सीखे हुए थे। छम्मन साहब तानसेन परंपरा के मुहम्मद अली खाँ गिधौरवालों को बहुत मानते थे। ठाकुर नवाब अली साहब ने भी इन मुहम्मद अली खाँ से कुछ होरी ध्रुवपद प्राप्त किये थे जो उनकी मआरिफ-उल-नगमात के दूसरे तथा तीसरे भाग में प्रकाशित हैं। मुहम्मद अली खाँ का एक छायाचित्र भी ठाकुर साहब ने दूसरे भाग में मुखपृष्ठ पर दिया है। ये मुहम्मद अली खाँ तानसेन के पुत्र की वंशपरंपरा के थे। तानसेन की पुत्री के वंशज स्व० वज़ीर खाँ साहब बीनकार इसी समय रामपुर में तत्कालीन रामपुर नरेश हिज हाइनेस नवाब हामिद अली साहब के उस्ताद थे। स्वयं नवाब साहब तानसेन परम्परा के बड़े अभिमानी थे। अपने उस्ताद के अतिरिक्त और किसी का अधिकार संगीत में नहीं मानते थे। जब काले नज़ीर खाँ, ठाकुर नवाबअली साहब तथा स्वयं छम्मन साहब के मुख से अण्णासाहब की प्रशंसा सुनी तो नवाब साहब को भी कुतूहल उत्पन्न हुआ और उन्होंने रामपुर पधारने के लिये अण्णासाहब को एक निमंत्रण पत्र लिखवाया। अब इस समय से अण्णासाहब का स्नेह संबंध रामपुर दरबार के साथ जुड़ गया। इसमें एक विशेषता थी कि रामपुर नरेश स्वयं तथा उनके दरबारी लोग संगीत के केवल जानने वाले ही नहीं वरन् ऊँचे कलाकार भी थे, जिसके कारण अण्णासाहब के

संगीत में अधिकार तथा उनके संगीतोद्धार अभियान का मूल्य वे लोग भली-भाँति समझ सकते थे। नवाब साहब रामपुर तथा उनके उस्ताद वज़ीर खाँ साहब के साथ प्रथम दो-चार बैठकों में बहुत चर्चा एवं वादविवाद हुआ। पर अण्णासाहब ने रामपुर की ही गायन-वादन शैली, राग स्वरूप तथा ध्रुवपद-होरियों के उदाहरणों द्वारा अपने संगीत-सिद्धान्त उनके सम्मुख सिद्ध किये। तब स्वयं नवाब साहब ने लक्ष्यसंगीत प्रणाली को जी जान से मान लिया। तानसेन परंपरा के होरी ध्रुवपद वज़ीर खाँ साहब के पास थे। उनको प्राप्त करने की इच्छा अण्णासाहब की थी। उनको सूचना मिली कि यदि अण्णासाहब नवाब साहब के शिष्य हो जावें तो वे सब होरी ध्रुवपद उनको प्राप्त होंगे। अण्णासाहब नवाब साहब के शिष्य हो गये और नवाब साहब ने एक-दो ध्रुवपद अण्णासाहब को सिखाये और पश्चात् वज़ीर खाँ साहब को आदेश दिया कि पंडित भातखंडे जी अब हमारे घराने के शिष्य हो गये हैं, इनको सब ध्रुवपद, होरियाँ आप ही स्वयं सिखायेंगे। तब से अण्णा-साहब वज़ीर खाँ साहब से ध्रुवपद होरी सीखने लगे। इस प्रकार रामपुर में भी वर्ष भर में दो-तीन बार अण्णासाहब का आना जाना होने लगा। ये सब घटनाएँ सन् १९१७-१८ के पूर्व की हैं। सन् १९१६ में बड़ौदा की प्रथम अखिल भारतीय संगीत परि-षद् के पश्चात् दूसरी परिषद् दिल्ली में सन् १९१८ के दिसम्बर में हुई। इस परिषद् के अध्यक्ष हिज हाइनेस नवाब साहब रामपुर थे। नवाब रामपुर, छम्मन साहब, ठाकुर नवाब अली साहब एवं अण्णासाहब—सब की इच्छा से हिन्दुस्तानी संगीत की एक केन्द्रीय शिक्षण संस्था दिल्ली ही में स्थापित करने का प्रस्ताव इस परिषद् में पहिली बार रखा गया। स्वयं नवाब साहब का विचार इस संस्था के लिये पर्याप्त द्रव्य सहा-यता देने का था। पर इसके पश्चात् कुछ अनिवार्य अड़चनों के कारण ये विचार सफल न हो पाये। इसी बीच में छम्मन साहब का भी स्वर्गवास हो गया। वे अण्णासाहब को बहुत मानते थे, उनकी हर सूचना पर सहमति व सहयोग देते थे। तथापि अण्णासाहब का रामपुर दरबार से स्नेह संबंध बना रहा। वे समय-समय पर रामपुर जाते रहे। दिल्ली की परिषद् में भी भारत भर के बड़े-बड़े गुणी गायक-वादक उपस्थित थे और उनके गायन-वादन के कार्यक्रम हुए। पर सबसे महत्वपूर्ण घटना इस परिषद् में यह थी कि सब घरानेदार गायकवादकों के साथ बैठकर अण्णासाहब ने कई विवादग्रस्त रागरूप, जैसे सारंग प्रकार, तोड़ी प्रकार त्यादि पर सप्रमाण, सोदाहरण चर्चा की और सारंग व तोड़ी प्रकारों के रागरूप सर्व सम्मति से निश्चित हुए। इस चर्चा का उल्लेख अण्णासाहब ने अपनी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चौथे भाग में सारंग तथा तोड़ी समझाते समय किया है। इस परिषद् में दिल्ली के एक काश्मीरी पंडित श्री बृजनारायण कौल ने बहुत कार्य किया। इस परिषद् के वे स्थानीय सचिव थे।

अण्णासाहब के इन सब कार्यों में उनके साथ भालचन्द्र सुकथनकार, शंकरराव करनाड सहायक के रूप में सदा रहते थे। परिषदों में उपस्थित रहकर उसकी चर्चाओं में शंकरराव करनाड अवश्य भाग लेते थे। संगीत के एकाध विषय पर निबंध भी पढ़ते थे। सब संगीत परिषदों में वाड़ीलाल जी तथा मैं अपने पिताजी के साथ उपस्थित हुए थे। इन सबके अतिरिक्त अण्णासाहब के एक अन्य प्रिय जन पूने में श्री दत्तात्रेय केशव उर्फ

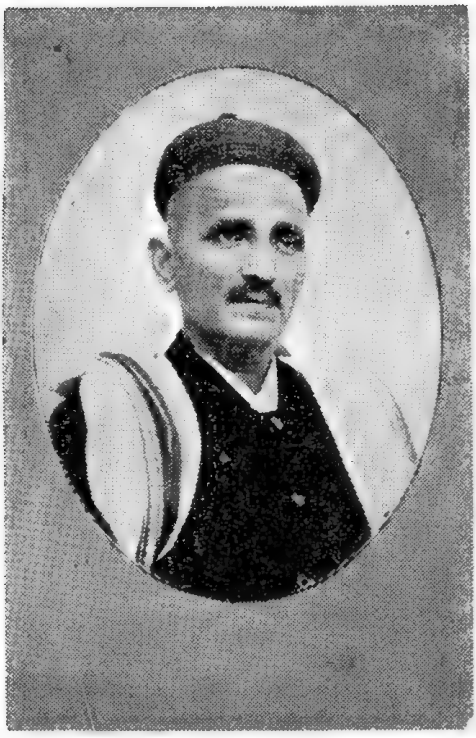

पण्डित भातखण्डे
[१९१७]

पण्डित भातखण्डे
[१९२४]

पण्डित भातखण्डे [१९२७]

पण्डित भातखण्डे [१९३३]

दादासाहब जोशी थे। अण्णासाहब की पुस्तकों के प्रकाशन में, जो आर्य भूषण प्रेस में छप रही थीं, उनकी प्रूफ रीडिंग, छपाई आदिकी देख-भाल इन्हीं दादासाहब द्वारा की जाती थी। उन्होंने इस प्रकार अण्णासाहब के कार्य में पर्याप्त सहयोग दिया। दादासाहब भी अण्णासाहब के साथ बड़ौदा, रामपुर, ग्वालियर कभी-कभी जाया करते थे। दादासाहब ने कुछ ख्याल गणपतराव मिलवड़ीकर नामक एक गायक से प्राप्त किये थे। अण्णासाहब का इन गायक महोदय से परिचय दादासाहब के ही द्वारा हुआ। श्री मिलवड़ीकर से अण्णासाहब ने भी कुछ चीजें ग्वालियर घराने की प्राप्त की थीं। ये सब चीजें बाद में ग्वालियर के गायकों के पास ग्वालियर परंपरा के अनुसार गायी हुई अण्णासाहब को प्राप्त हुईं। और उन्हें ग्वालियर के पाठों के अनुसार क्रमिक पुस्तक मालिका में छपवाकर उन्होंने प्रकाशित किया। ग्वालियर के गायक बम्बई में अण्णासाहब के पास आये थे, उससे पहले ग्वालियर के एकनाथ उर्फ माऊ पंडित ने बम्बई आकर अण्णासाहब को अपने घराने की लगभग तीन-चार सौ चीजें दी थीं। माऊ पंडित ग्वालियर के प्रख्यात गायक शंकरराव पंडित के छो भाई थे। कुछ आर्थिक अड़चनों के कारण सन् १९१५-१६ में बंबई आकर संगीत प्रेमी सज्जनों को संगीत शिक्षा देते रहे, जिससे पर्याप्त द्रव्य-प्राप्ति होती रही। अण्णासाहब चीज की तलाश में सदैव रहते ही थे। एकनाथ जी की वार्ता सुनकर उनसे कुछ चीजें प्राप्त करने के हेतु अण्णासाहब ने उनको अपने यहाँ बुलवाया और उनका पारिश्रमिक निश्चित करके चीजें लिखना आरंभ किया। इस प्रकार तीन-चार सौ चीजें ग्वालियर के घराने की अण्णासाहब के पास इकट्ठी हो गईं। जैसे कि ऊपर बताया गया है, ये चीजें ग्वालियर के गायक राजा भैया, कृष्णराव दाते आदि के पास भी मिलीं। कहीं एकाध स्थान पर पाठभेद होता था तो माऊ पंडित जी के पाठों को देखकर दोनों पाठों पर विचार करके शुद्ध पाठ निश्चित कर रखा जाता था। पर ऐसा कभी-कभी ही होता था, क्योंकि ग्वालियर के ख्यालों की रचनाएं निसार हुसैन खाँ साहब ने शंकरराव पंडित को जिस प्रकार सिखायी थीं, उसी प्रकार उनके घराने में उनके भाई, माऊ पंडित तथा उनके पुत्र श्री कृष्णराव तथा शिष्य राजाभैया, कृष्णराव दाते, खाँडेपारकर इत्यादि सब गाते थे। अतएव कोई विशेष अन्तर माऊ पंडित के लिखवाए हुए ख्यालों तथा राजाभैया आदि सज्जनों के गाए हुए ख्यालों में नहीं था। वरन् इन लोगों के ख्यालों को माऊ पंडित के लिखाए हुए ख्यालों का आधार मिला।

एकनाथ पंडित से परिचय होने के पहले अण्णासाहब ने ख्यालों का एक बड़ा संग्रह मिरज के गोखले घराने के कृष्णराव गोखले से भी प्राप्त किया था।

सन् १९१९ दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में तीसरी अखिल भारतीय संगीत परिषद् बनारस में हुई। जिसके सचिव स्वर्गीय शिवेन्द्रनाथ बसू उर्फ सन्नू बाबू थे। जो ये बनारस के ही निवासी एक रईस थे और संगीत से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। अखिल भारतीय परिषद् मंडल के स्थायी सचिव तो अण्णासाहब स्वयम् ही थे। उन्हीं के बताए हुए मार्ग पर इन अखिल भारतीय संगीत परिषदों के अधिवेशनों का संचालन चलता रहा। अधिकारी घरानेदार गायकों तथा वादकों के साथ बैठकर रागों के संबंध में चर्चा द्वारा मतभेद मिटाकर उनके अधिकृत स्वरूप निश्चित करके प्रकाशित करना इन परिषदों का ध्येय रहा है। बनारस के अधिवेशन में भी उन्होंने गायक-वादकों की सभा बुलायी थी।

रागों पर चर्चा हुई। राग-स्वरूप निश्चित हुए, जिनके अनुसार हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के चौथे भाग में उन रागों को समझाया है।

ठाकुर नवाब अली साहब का प्रगाढ़ स्नेह सम्बन्ध दरियाबाद जिला बाराबंकी, उत्तर प्रदेश के तालुकेदार घराने के साथ रहा। इसका कारण संगीत ही था। क्योंकि इन तालुकेदारों को भी संगीत से उतना ही उत्कट प्रेम था जितना कि ठाकुर नवाब अली साहब को। विशेषतया इस घराने के एक प्रमुख व्यक्ति, राय उमानाथ बली साहब से तो लगातार मेल-मुलाकात संगीत की बैठकों में होती रहती। अण्णासाहब तथा ठाकुर नवाब अली का अच्छा स्नेह रहा है और इन दोनों के बीच संगीत पर पत्र व्यवहार भी होता रहा है, इस बात से राय उमानाथ बली भलीभाँति परिचित थे। अण्णासाहब से मिलने की अत्यन्त उत्कण्ठा राय साहब में जागृत हुई। और इसी हेतु वे अ० भा० संगीत परिषद् के दूसरे दिल्ली अधिवेशन में उपस्थित रहे। दरियाबाद का तालुकेदार घराना बड़ा ही सुसंस्कृत एवं विशेष कला-प्रेमी था। स्वयम् स्वर्गीय राय राजेश्वर बली को संगीत, नाट्य तथा चित्रकला से अत्यन्त प्रेम था। एकाध गायक तथा चित्रकार उनके आश्रित भी थे। चित्रकला पर उपलब्ध अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य का अच्छा अध्ययन उन्होंने किया था। रामलीला, रासलीला तथा अन्यान्य पौराणिक, धार्मिक नाट्य प्रयोग हर मौके पर उनके यहाँ होते रहते थे। कुछ नाटक तो स्वयम् राजा साहब लिखते और उनके प्रदर्शन करवाते। राजासाहब के अतिरिक्त इस घराने के अन्यान्य सज्जनों को भी संगीत तथा साहित्य, चित्रकलादि का शौक था। राय उमानाथ बली विशेषतया संगीत प्रेमी थे। पढ़े-लिखे एवं सुसंस्कृत होने के कारण संगीत की नियमबद्ध, समुचित शिक्षा प्रणाली की खोज में थे। अपने आश्रित गायक के पास बैठ कर कुछ अभ्यास उन्होंने किया था। पर उससे उनका समाधान न हुआ। ठाकुर नवाब अली साहब के यहाँ उनका आना-जाना होता ही था। अण्णासाहब का नाम और उनके कार्यों के सम्बन्ध में सुनकर उन्होंने अण्णा साहब से परिचय प्राप्त करने का निश्चय किया। और वे दिल्ली के अधिवेशन में उपस्थित रहे। तभी से अण्णासाहब के साथ उनका पत्र व्यवहार आरम्भ हुआ। अ० भा० संगीत परिषद् के दिल्ली अधिवेशन में एक मध्यवर्ती बड़ी संस्था दिल्ली में ही स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया; पर वह पारित न हो सका। राय उमानाथ बली ने भी एक संगीत संस्था लखनऊ में खोलने की योजना तैयार करके रखी थी। अण्णासाहब को उन्होंने अपनी योजना दिखायी। यह योजना दिल्ली के अधिवेशतु में प्रस्तुत योजना से कुछ छोटी थी। दिल्ली की प्रस्तुत योजना के सम्बन्ध में अण्णासाहब को उस समय उसके सफल होने के पूर्ण आशा थी; पर विध विधान कुछ और ही था दिल्ली की योजना आखिर कागजो में ही रह गइ। बनारस के तीसरे अधिवेशन में भी पुनः दिल्ली वाला प्रस्ताव श्रीमती अतिया वेगम सासिबा, फैजी रहमीन द्वारा रखा गया। पर वहाँ भी यह पनप न पाया। इस बीच में राय उमानाथ बली साहब के प्रयत्न लखनऊ में संगीत शिक्षा संस्था खोलने के सम्बन्ध चल रहे थे। अण्णासाहब के साथ भी इसके सम्बन्ध में आग्रह, का पत्र-व्यवहार चलता रहा। जब बनारस में भी दिल्ली वाला प्रस्ताव सफल ना हुआ, तो राय उमानाथ साहब लखदऊ ही में संगीत परिषद बुलाने के प्रयत्न में लगे।

अण्णासाहब के साथ इसके सम्बन्ध में पत्र व्यवहार शुरू किया। दैववश संयोग से इस समय लखनऊ का शासकीय विभाग भी संगीत परिषद् की योजना के लिये अनुकूल था। उत्तर-प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर स्व० सर विलियम मैरिस पौर्वात्य संस्कृत साहित्य तथा कला के साथ सहानुभूति रखने वाले थे। भारतीय तथा यूनानी साहित्य और कला कौशल का तो उन्होंने विशेष अध्ययन किया था। इसी के कारण दरियाबाद के तालुकेदार के साथ उनका विशेष स्नेह-सम्बन्ध था। और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसी समय राजा राय राजेश्वर बली स्वयम् संयुक्त प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री थे। इन्होंने लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् बुलाने की कल्पना सर विलियम मैरिस साहब को समझा कर उनकी सहमति ही नहीं ली, अपितु सहयोग भी प्राप्त किया। राय उमानाथ बली साहब ने संगीत परिषद् के अधिवेशन में तथा लखनऊ में संगीत शिक्षा संस्था स्थापित करने की योजना के सम्बन्ध में रखे जानेवाले प्रस्ताव पर विचार विनिमय करने के लिये अण्णासाहब को दरियाबाद आने के लिये आग्रह-पूर्वक निवेदन किया। अण्णासाहब सन् १९२३ के अन्तिम मास में दरियाबाद गये। राजा साहब दरियाबाद, राय उमानाथ बली तथा अण्णा साहब ने मिलकर एक योजना बनायी। सन् १९२४ के दिसम्बर महीने के अन्तिम सप्ताह में केसरबाग बारादरी लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् का चौथा अधिवेशन हुआ। अण्णा साहब की योजना के अनुसार इसमें भी समस्त भारत भर के हिन्दुस्तानी गायक-वादक तथा संगीत-पंडितों को आमन्त्रित करके रागों के स्वरूपों पर चर्चा हुई। संगीत शिक्षा संस्था खोलने के लिये पर्याप्त धन इकट्ठा हो नहीं पाया था। अतएव उसका प्रस्ताव इस अधिवेशन में रखा ही नहीं जा सका था। विशेषतया यह प्रस्ताव परिषद् के सम्मुख पुनः रखने के हेतु ही सन् १९२५ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में वहीं केसरबाग बारादरी, लखनऊ में अ० भा० संगीत परिषद् का पाँचवाँ अधिवेशन बुलाया गया। लखनऊ के इस अधिवेशन में समस्त संयुक्त-प्रदेश की संगीत प्रेमी जनता उपस्थित थी। लगभग पाँच हजार श्रोता आये थे। इस प्रदेश की जनता के लिये तो संगीत परिषद् एक नयी वस्तु थी। संगीत की इतनी बड़ी महफ़िल उन्होंने अपने प्रदेश मेंकभी नहीं देखी थी। परिषद् में रागदारी संगीत के कार्यक्रम भी बड़े मनोरंजक एवं चिरस्मरणीय हुए थे। संयुक्त प्रदेश के लोग यों भी भावप्रधान एवं उदार अन्तःकरण के होते हैं। जो संगीत अभी तक राजप्रासादों में छिपा हुआ था, उसके वैभव का प्रत्यक्ष अनुभव पाकर उस के प्रति उनकी भावनाएँ जागृत हुईं। इस अधिवेशन में प्रस्तुत संगीत विद्यालय सम्बन्धी प्रस्ताव का सभी ओर से बड़े उत्साह के साथ स्वागत हुआ। इस महत्वपूर्ण कार्य को आरम्भ करने भर के लिये धन इकट्ठा हो गया। लखनऊ में हुई इन दोनों संगीत परिषदों में मैं भी उपस्थित था एवं मेरे गाने के कार्यक्रम भी हुए थे, जो पर्याप्त लोकप्रिय हो गये थे।

सन् १९२६ की जुलाई में लखनऊ में केसर बाग के पास ही नील रोड पर, तोपवाली कोठी में हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत की कक्षाएँ खुल गईं। अनणासाहब ने मुझे इस संस्था में कार्य करने लिए के आज्ञा दी। मैं इसी वर्ष जून में बंबई विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था, और आगे एल० एल० बी० करके वकालत

का कार्य करते हुए संगीत की निरपेक्ष सेवा करने की बात सोच रहा था। पर स्वयम् अण्णासाहब की इच्छा थी कि मैं संगीत ही का कार्य करता रहूं। उनकी आज्ञा हुई कि मैं लखनऊ जाकर वहाँ नयी खुली हुई संगीत संस्था में कार्य करूं। यह आज्ञा पाते ही मैं अपने पिताजी के साथ लखनऊ चला गया। अण्णासाहब वहाँ पहले ही पहुंच गये थे। उनके साथ श्री दादासाहब जोशी तथा उनके छोटे भाई श्री माधवराव केशव जोशी; जो उस समय बम्बई सरकार के शिक्षाविभाग में डिप्टी इन्स-पेक्टर आफ स्कूल्स के पद से सेवा निवृत्त हुए थे, लखनऊ पहुँचे। विद्यालयों के दैन-न्दिन कार्यक्रम तथा उनके संचालन के विषय में एक अनुभवी व्यक्ति के नाते श्री माधव-राव जोशी की नियुक्ति संस्था के प्रधानाचार्य के पद पर हुई थी। ग्वालियर के माधव संगीत महाविद्यालय के स्नातक श्री गोविन्द नारायण नातू की भी नियुक्ति गायन विभाग में एक शिक्षक के पद पर हुई। मेरी नियुक्ति उप-प्रधानाचार्य के पद पर हुई। कुछ वादनकारों की भी नियुक्ति की गई। शाहजहाँपुर के सरोद नवाज सखावत हुसैन खाँ तथा लखनऊ के प्रसिद्ध तबला वादक आबीद हुसैन खाँ भी संस्था में लिये गये। लखनऊ के एक दो गायन के उस्ताद छोटे मुन्ने खाँ ख्यालिये तथा अहमद खाँ ध्रुपदिये भी गायन विभाग में नियुक्त किये गये। संस्था की कक्षाओं का कार्य जुलाई १९२६ में आरम्भ हुआ था। पर उसका उद्घाटन सितम्बर १६, १९२६ को सर विलियम मैरिस के द्वारा हुआ। अण्णासाहब स्वयं उद्घाटन के पश्चात् छः महीने अर्थात् मार्च १९२७ तक लखनऊ में ही रहकर संस्था के काम-काज की देखभाल करते रहे। कभी-कभी कक्षाओं में स्वयं जाकर हम लोगों का मार्ग दर्शन करने के हेतु पाठ भी पढ़ाते थे। अण्णा-साहब स्वयं एक कुशल शिक्षक थे। विषय कोई भी क्यों न हो, उसको सरल एवं मनोरंजक बनाकर समझा देने का कौशल उनमें विशिष्ट था। कक्षा चलाते हुए उनको देखते ही बनता था। इधर लखनऊ के उस्ताद छोटे मुन्ने खाँ तथा अहमद खाँ से उनके घरानों की चीजें भी संग्रह करते रहे। ठाकुर नवाब अली साहब को इस बीच में राजा की पदवी सरकार की ओर से प्राप्त हुई थी। राजा नवाब अली साहब भी लग-भग रोज आकर अण्णासाहब से मिलते रहे। कक्षाओं में भी जाकर काम-काज की जाँच पड़ताल किया करते। अण्णासाहब का लिखना-पढ़ना यहाँ भी चलता रहा। विलियम पोल के "फिलोसोफी आफ म्यूजिक" जैसे कुछ अंग्रेजी संगीत ग्रन्थों का अध्ययन वे मनोयोग-पूर्वक करते रहे। और उन पर अपने विचारों की टिप्पणियाँ लिखते रहे। कभी मुझको सिखाते भी रहे। राजा साहब अथवा कोई अन्य संगीतज्ञ अण्णासाहब से मिलने आता तो उसके साथ जो संगीत चर्चा होती थी, वह बड़ी रोचक एवं उद्बोधक होती। उसको सुनकर हम लोगों को बहुत कुछ लाभ होता। कभी-कभी अण्णासाहब अंग्रेजी उपन्यास भी पढ़ते। इसी समय हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चौथा भाग पूने के आर्यभूषण मुद्रणालय में छप रहा था। उसके प्रूफ फार्म दुरुस्त करके पूना लौटाने का कार्य भी चलता रहा। वे दिन भर कुछ न कुछ काम करते ही रहते। मैंने अण्णासाहब को दिन में कभी आराम करते हुए नहीं देखा। मेरे पिताजी, दादासाहब, माधवराव फिर भी मध्याह्न के भोजनोपरान्त आधा घण्टा आराम अवश्य कर लेते थे। पर अण्णासाहब दिन

में कभी बिस्तरे पर लेटते नहीं देखे; यद्यपि रक्त चाप का रोग उनको कई वर्षों से था। संभव है इसी के कारण उनको नींद बहुत कम आती थी।

मार्च १९२७ में, जब संस्था का कार्य ठीक मार्ग पर चलता हुआ देखा, तब अण्णा-साहब बम्बई लौट गये। तब से सन् १९३३ तक वर्ष में एक दो बार अपने निजी खर्च से लखनऊ आते, हम लोगों का कामकाज देखते, आठ-दस रोज रहकर संस्था का निरीक्षण करते।

सन् १९२८ सितम्बर में श्री माधवराव जोशी सेवानिवृत्त हुए और उनके स्थान पर मेरी नियुक्ति हुई। इसी समय मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक के लिये लखनऊ के केसरबाग में स्थित कौंसिल चैम्बर की इमारत सरकार की ओर से अनुदान में मिली। कालेज अगस्त १९२८ में इस इमारत में स्थानान्तरित हुआ। मैंने अपना नया कार्य इसी नये स्थान में आरम्भ किया। इसी इमारत से जुड़ी हुई एक छोटी इमारत में मुझे रहने के लिये एक कमरा मिला। इसी एक कमरे में मैं सन् १९५६ के अन्त तक (२८ वर्ष) रहा। प्रधानाचार्य के स्थान पर मेरी नियुक्ति होने के पश्चात् अण्णासाहब लखनऊ आते तो इसी कमरे में ठहरते। मेरे वे दिन, जबकि अण्णासाहब आकर ठहरते बहुत आनन्द के साथ बीतते।

तोपवाली कोठी किराये पर थी। नयी इमारत के लिए किराया तो देना ही पड़ता था। पर किराए की रकम का अनुदान सरकार की ओर से कालेज को प्राप्त था। कालेज के खुलते ही चन्द महीनों में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। यहाँ तक कि सन् १९२७ के आरम्भ में ही तोपवाली कोठी कालेज की बढ़ती हुई कक्षाओं के लिए अपूर्ण प्रतीत होने लगी। अतएव उसी कोठी के पड़ोस की चाँदीवाली कोठी भी किराए पर लेनी पड़ी। सन् १९२७ में जब अण्णासाहब लखनऊ आए, उनके लिए चाँदीवाली कोठी में एक कमरा स्वतन्त्र रखा गया। इसी कमरे में बैठकर वे अपना लेखन-पठन करते थे। कई स्फुट लेख संगीत पर तथा कुछ संगीत ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ इसी कमरे में बैठकर लिखी गईं।

सन् १९२६ में, जब कालेज में दुर्गापूजा की १५ दिन की छुट्टियाँ हुईं, अण्णा-साहब मेरे ज्येष्ठ गुरुबन्धु श्री वाड़ीलाल जी तथा मुझको साथ लेकर हरिद्वार गए। एक सप्ताह हम लोग हरिद्वार रहे। वहाँ अण्णासाहब ने हम लोगों को बहुत कुछ बातें भारतीय संस्कृति की उसके इतिहास के सहित समझायीं। संगीत पर भी पर्याप्त उद्बोधक वार्तालाप हुआ।

सन् १९२७ में फिर पुनश्च दुर्गापूजा के अवसर पर अण्णासाहब मुझे लेकर वाराणसी गए। वहाँ हम लोग कमाच्छा में थियोसाफ़िकल सोसायटी में ठहरे। वहाँ के कुछ संगीत प्रेमी सज्जनों से मेरा परिचय अण्णासाहब ने करा दिया। इन सज्जनों ने अपना स्नेह सम्बन्ध आजतक कायम रखा है। इनमें विशेष उल्लेखनीय थे : केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण विभाग के भूतपूर्व मन्त्री डा० बालकृष्ण व्ही० केसकर, जो उस समय वाराणसी के संस्कृत विद्यापीठ में प्राध्यापक का कार्य करते थे। डाक्टर केसकर का स्नेह संबन्ध

अण्णासाहब के साथ बहुत अच्छा था। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका के मराठी शास्त्रीय लेखों का हिन्दी रूपान्तर डा० केसकर ने ही किया था, जो शास्त्र-प्रवेश नामक पुस्तक मालिका के नाम से ३ भागों में छपकर प्रकाशित हुआ था। डा० केसकर ने वाराणसी में हरिनारायण मुकर्जी के पास ध्रुवपदों का अभ्यास किया था और वे अण्णासाहब के संगीत वाङ्मय तथा संगीत प्रचार कार्य से भलीभाँति परिचित थे।

इनके अतिरिक्त श्री महादेव के० सामन्त जो अब भी राजघाट स्कूल, वाराणसी में कार्य कर रहे हैं। वे रागदारी संगीत के अच्छे मर्मज्ञ हैं। दूसरे श्री केव्वकर संजीवराव जो देहरादून के पास झरीपानी में एक स्कूल में कार्य कर रहे हैं, तथा श्री वासुदेवन नामक एक चित्रकला निपुण, जो आजकल मद्रास में हैं—इन सभी के साथ घनिष्ठता हुई। आठ-दस दिन वाराणसी में अण्णासाहब के सान्निध्य तथा थियोसाफ़िकल सोसायटी के उच्च सांस्कृतिक वातावरण में बहुत आनन्द के साथ व्यतीत हुए।

सन् १९३३ तक वर्ष में दो बार लखनऊ आने का क्रम अण्णासाहब का जारी रहा। इस बीच में बहुत से लोग उनसे मिलने आते। विशेषतः लखनऊ युनिवर्सिटी के प्राध्यापक धूर्जटी प्रसाद मुकर्जी, जिनको संगीत से विशेष प्रेम था; अण्णासाहब से मिलने आते। वे संगीत की चर्चा अण्णासाहब से सुनते। भाषण की एक विशेष शैली अण्णासाहब की थी, जिसके प्रभाववश सुननेवाला सुनता ही रहता और अपनी ओर से कुछ बोलना व्यर्थ समझता था। किसी विषय पर अण्णासाहब की बातचीत आरंभ हुई कि उसकी पूरी छानबीन सुन्दर शब्दों में, कभी-कभी हंसी-मजाक के साथ करते हुए उसकी समाप्ति करते थे। सुननेवाले के मन में आती हुई शंकाएं, कल्पनाएँ मानों उसके हाव भाव, उसके चेहरे से ही समझकर उसकी चर्चा अपने सम्भाषण में उल्लेख करते हुए समाधान करते थे। इस समय श्री दिलीपकुमार राय, जो आजकल पूने में आध्यात्मिक साधना में अपना जीवन बिता रहे हैं, अण्णासाहब के संगीत तथा प्रचारकार्य से प्रभावित हुए। वे अण्णासाहब के प्रशंसकों में विशेष स्थान रखते थे। सन् १९२८ में इन महाशय ने मुझको कलकत्ता ले जाने का आग्रह किया। दो-तीन कार्यक्रम मेरे गाने के इन्होंने कलकत्ते में आयोजित भी किए। मैं अपने पिताजी के साथ कलकत्ता चला गया। हम लोगों को कलकत्ते के एक गणमान्य वकील श्री मुजुमदार साहब के यहाँ ३४ थिएटर रोड पर ठहराया गया। मुजुमदार-साहब दिलीपकुमार राय के सम्बन्धी थे और संगीत से अत्यन्त प्रेम रखते थे। इनके निवास स्थान पर जहाँ हम लोग ठहरे थे, रोज—जब तक हम लोग कलकत्ता रहे—मेरा गाना होता रहा। गुरुदेव अण्णासाहब के आशीर्वाद तथा परमेश्वर की कृपा से कलकत्ते में, क्या घर पर और क्या ओह्वरटाउन हाल में, ये सब कार्यक्रम पर्याप्त सफल हुए। अण्णासाहब की संगीत शिक्षा प्रणाली की अत्यन्त प्रसिद्धि कलकत्ते भर में हुई। बड़ी संख्या में बंगाली संगीत प्रेमी युवक मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक, लखनऊ में भरती होने आते रहे। सन् १९२९ में दिलीपकुमार राय के दो चचेरे भाई, एक हेमेन्द्रलाल राय तथा उनके कनिष्ठ बन्धु रविन्द्रलाल राय जो आजकल दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दुस्तानी संगीत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य

कर रहे हैं; लखनऊ आए और मैरिस कालेज में भरती हुए। इनके साथ और भी एक बंगाली युवक अम्बिका चरण मुजुमदार भरती हुए। युवावस्था में ही इनका देहान्त हो गया। ये बहुत होनहार थे। यदि जीवित रहते तो एक नामांकित गायक तथा संगीतज्ञ होकर निकलते। ये तीनों सज्जन कलकत्ता युनिवर्सिटी के उपाधिधार थे। पढ़े-लिखे एवं बुद्धिमान् होने के कारण इन्होंने अच्छी प्रगति संगीत में की। अण्णासाहब जब-जब लखनऊ आते इन तीनों की प्रगति की पूछताछ करते। कभी-कभी इनको कुछ सूचनाएँ भी संगीत के अभ्यास के सम्बन्ध में देतें। मुझे भी इन सभी के अभ्यास तथा प्रगति पर विशेष ध्यान देने को कहते। सन् १९३० में मैंने एक त्रैमासिक "संगीत" नाम से चलाना आरम्भ किया। इसके संचालन में तथा लेखादि द्वारा इन बंगाली सज्जनों ने पर्याप्त सहयोग दिया। दुर्दैववशात् यह संगीत त्रैमासिक द्रव्य के अभाव के कारण दो वर्ष भी न चल सका। पर उसके जितने अंक प्रकाशित हुए, उन सब में बहुत उपयोगी लेख स्वयम् अण्णासाहब के तथा अन्य विद्वानों के लिखे हुए हैं; जिससे इस त्रैमासिक का स्तर पर्याप्त ऊँचा रहा। इसमें व्यावसायिकता का नाम भी न था, यह बात उसको देखते ही स्पष्ट होगी।

अण्णासाहब की निःस्वार्थ संगीत सेवा का प्रभाव राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर भी पड़ा। तीनों महापुरुषों के साथ अण्णासाहब का व्यक्तिगत स्नेह-संबंध, वार्तालाप, पत्र-व्यवहार संगीत शिक्षा प्रणाली के संबंध में होता रहता था। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा महामना मालवीय ने विश्वभारती के हिन्दुस्तानी रागदारी संगीत शिक्षा-विभाग में तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत शिक्षा विभाग में अण्णासाहब के ही बताए हुए मार्ग पर उन्हीं के बनाये हुए पाठ्यक्रम के अनुसार संगीत शिक्षा का कार्य आरंभ किया। विश्वभारती में अब भी हिन्दुस्तानी रागदारी शिक्षा इसी क्रम से चल रही है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पर पं० मालवीय जी के स्वर्गवास के पश्चात् न जाने कैसी-कैसी कितनी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आपत्तियाँ आयीं, जिनके कारण विश्वविद्यालय और विशेष रूप से संगीत विभाग का तो पुनर्गठन-सा हो गया है। महात्मा गांधी जी ने भी अण्णासाहब को अपने यहाँ आमंत्रित करके संगीत शिक्षा के संबंध में उनके साथ विचार-विनियम किया था। यह घटना लगभग सन् १९२५ की होगी। अस्तु।

सन् १९३२ में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का चौथा भाग छप कर प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष अण्णासाहब लखनऊ आये थे। सन् १९३३ के अप्रैल में भी आये थे। और यही उनका वहाँ अन्तिम आगमन था। मेरे पास उनके पत्र आया करते थे। मेरे नाम उनका अन्तिम पत्र दि० १२-१०-१९३३ का लिखा हुआ है। इसके पश्चात् सन् १९३३ में ही एक दिन प्रातः अपने कमरे में बैठे हुए वे कुछ पढ़ रहे थे। उसी समय अखबार वाला आया और उसने खिड़की में से अखबार अन्दर डाल दिया। बस यही मानों परमात्मा का बुलावा आया था। अखबार उठाने को अपनी कुर्सी से उठे और तत्काल पक्षाघात का आकस्मिक आक्रमण हुआ और वे गिर पड़े। बिस्तरे पर लिटा दिए गए। दो-ढाई वर्ष उसी अवस्था में पड़े रहे। कोई देखने जाता तो लेटे-लेटे ही बातचीत करते। इसी अवधि में हिन्दुस्तानी

संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका का पाँचवाँ तथा छठवाँ भाग छप रहा था। ये दोनों लगभग पूरे छप चुके थे। केवल उनके प्रकाशन की देर थी कि इतने में सन् १९३६ की सितम्बर मास की १९ तारीख को गणेश चतुर्थी के दिन प्रातःकाल संगीत संसार के युगप्रवर्तक यह महापुरुष सदा के लिये अन्तर्हित हो गए।

साङ्गं गीतरहस्यमाकलितमत्युद्बोधितं लीलया।
येन श्रीभरतं प्रतीव पुनरुद्भूतं तमात्मौजसा॥
गीतग्लानिविनाशकं सुचरितं वाग्गेयकारं मुनिं।
वन्दे विष्णुविभुं वरं गुणमयं नारायणांशं गुरुम्॥

—"सुजान"

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे की
जन्म-लग्न-कुण्डली

जन्म दिवस—श्रावण कृष्ण अष्टमी, शकाब्द १७८२, सम्वत् १९१६ तदनुसार शुक्रवार दिनांक १० अगस्त १८६० ।

जन्म समय—प्रातः ८-३० बजे (स्टेण्डर्ड टाइम)

जन्म स्थान—वालकेश्वर, बम्बई ।

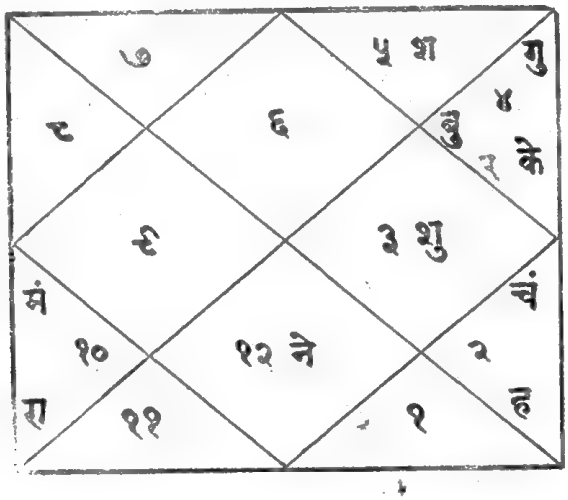

प्रस्तुत जन्म-लग्न-कुण्डली श्री के० जी० गिण्डे की ओर से प्राप्त हुई थी । जिसे होराभूषण डा० विनायक मुरलीधर जोशी, श्रीगोंदा, जिला अहमदनगर ने संशोधित कर फलादेश सहित वाचकों के लिये उपलब्ध किया है ।

—सम्पादक

फलादेश

होराभूषण पं० वि० मु० जोशी, शास्त्री, श्रीगोंदा

स्व० पं० विष्णु नारायण भातखण्डे की जन्मकुण्डली में संगीतशास्त्र का कारक ग्रह गन्धर्वराज शुक्र दशम स्थान में अर्थात् आकाशमध्य में है और यही ग्रह अन्य सभी ग्रहों में अत्यंत प्रभावी व अधिकतर फलदायी होता है। इस कुण्डली में सुरीली आवाज का कारक ग्रह शुक्र और मिथुन राशि इन दोनों का सुन्दर संगम हुआ है। ग्रहों की यह युति आदर्श गायक होने के लिए अत्यावश्यक है। पंडित जी की कुण्डली में शुक्र ग्रह भाग्यस्थान और कण्ठस्थान का स्वामी है, जो पुनर्वसु नक्षत्र में तथा स्वनवमांश में हैं। गुरु और चन्द्र अपनी उच्चराशि में हैं इनके शुभ कर्तरि में शुक्र है, अतः अधिक से अधिक शुभ-फल देनेवाला है। पंडित जी की कुण्डली का प्रमुख (Ruling)ग्रह शुक्र है। शुक्र की ऐसी बलवान और शुभ फल देने वाली स्थिति होने के कारण पंडित जी को सङ्गीत शास्त्र के प्रति तीव्रतम जिज्ञासा हुई और इसी कारण से वे संगीत की महान् सेवा कर सके। शुक्र को सहायता करनेवाले ग्रह गुरु और चन्द्र हैं। मनोरंजन का कारक और संगीत के लिए पोषक ग्रह चन्द्र भाग्य-स्थान में स्वोच्च राशि में हैं। ये समस्त ग्रहयोग संगीत के लिए अच्छा फल देने वाले हैं।

विद्याप्रेमी गुरु लाभ-स्थान में स्वोच्च राशि में है तथा वह रवि और बुध से युक्त है, अतः संगीत विद्या की दृष्टि से यह कुण्डली महत्त्वपूर्ण है। व्यय-स्थान में स्थित शनि के कारण पंडित जी का जन्म दारिद्र्यावस्था में हुआ। पंचम स्थान में मंगल तथा राहु हैं, एवं पंचमेश व्ययस्थान में पड़ा है। ग्रहों की इस स्थिति के कारण पंडित जी को परगृहवास करना पड़ा तथा विद्यार्जन में भी बहुत कष्ट उठाने पड़े। बुध-गुरु की युति के कारण तीव्र बुद्धिमत्ता, तीक्ष्ण ग्रहण-शक्ति, उत्तम व्यवहारज्ञान, कायदे-कानून का ज्ञान पंडित जी को प्राप्त हुआ। सप्तम स्थान में नेपच्यून ग्रह मीन राशि में है और उसके साथ चन्द्र-हर्शल-मंगल का त्रिरेका-दश योग हुआ है। जिनकी कुण्डली में ऐसा योग होता है, वे लोकोत्तर पुरुष होते हैं। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थिति में भी ऐसे व्यक्ति विजयी होते हैं तथा अपने ध्येय को प्राप्त कर लेते हैं। जन्मतः ईश्वर की कृपा व सहाय्य प्राप्त होना, अन्तःस्फूर्ति से कार्य करना, अलौकिक बुद्धिमत्ता होना, गायन-वादन में नैसर्गिक आकलन-शक्ति का होना और उनमें नैपुण्य प्राप्त कर लेना, आत्मानुभव होना तथा शत्रु को भी मित्र बनाने की कला होना आदि फल उपरोक्त ग्रहयोग दर्शाते हैं। गुरु-हर्शल शुभयोग भाग्य, कीर्ति तथा अधिकार का द्योतक है। असंख्य मित्र तथा प्रचुर संख्या में सहयोगी प्राप्त होना, अंगीकृत कार्य में लोकाश्रय मिलते रहना, उच्च प्रतिष्ठा मिलना, उच्च अधिकारी वर्ग तथा राजा

महाराजों का मित्रत्व और प्रेम प्राप्त होना, आदर, सम्मान तथा विद्वज्जनों से पदवियों द्वारा विभूषित होना, चिरन्तन कीर्ति देने वाले महत्वपूर्ण कार्य हाथ से होना इत्यादि का कारण यही शुभयोग है।

संगीत-कला तथा शास्त्र में नैपुण्य तथा कीर्ति प्राप्त कराने के लिए कुण्डली में मुख्यतः शुक्र तथा चन्द्र प्रबल होने चाहिए। पंडित जी की कुण्डली में ये ही ग्रह मुख्य तथा प्रबल हैं, जिससे वे संगीतशास्त्र के पुनरुद्धारकारक तथा भाग्यविधाता हो सके।